

प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली-110030

कम्पिला

धर्मवीर

लेखक

मूल्य पैंतीस रुपये/प्रथम संस्करण 1987/प्रकाशक प्रवीण प्रकाशन 1/1079-ई महरौली, नई दिल्ली 110030/आवरण एवं रेखांकन हरिप्रकाश त्यागी/मुद्रक शांति मुद्रणालय दिल्ली 32

KAMPILA (Poetry) by DHARAMVEER Rs 35 00

कुछ भी धरती से नही जुडता,
न ध्रुव के इस ओर, न ध्रुव के उस ओर,
क्षितिज के पार
अपने सपनो की भूमि को,
जहां कोई मेरी प्रतीक्षा मे है।

कम्पिला का गद्य

जब मैंने अपने साथियो को यह रचना दिखाई उन्होंने लगभग एक स्वर से माँग की कि मैं इसकी भूमिका अवश्य लिखू। मैं यह नही कहता कि मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली है, लेकिन, इस गद्य मे आगे के पृष्ठ उन्ही के लिए हैं।

पहली बात इस रचना के नाम की है। सबने जानना चाहा है कि यह कम्पिला कौन है। मैं यहाँ कहना चाहता हूँ कि इस शब्द के लिए शब्दशास्त्र से मेरा कोई मन्तव्य नही सधता है। इसका कुछ भी शाब्दिक अर्थ हो, मेरे लिए यह एक नारी का नाम है और बहुत प्यारा नाम है। यह मुझे पुकारने मे बहुत अच्छा लगता है।

मैं इस शब्द के लिए रांगेय राघव का ऋणी हूँ। उनके लिखे ग्रन्थ—महा यात्रा गाथा—के दूसरे भाग—रैन और चन्दा—मे यह शब्द आया है। वहाँ यह शब्द ही नही आया है, इसकी एक पूरी कथा आई है। उसमे कम्पिला हमारे प्राचीन इतिहास के मालवगण की किसान कन्या है। यह विक्रमादित्य की कहानी है। मैंने बहुत चाहा था कि मैं रांगेय राघव द्वारा रची गई इस कहानी को काव्य का रूप दू। लेकिन, आज मेरे पाठक इसे उस रूप मे नही पढ पा रहे हैं। मैं इस कथा को छोडने मे बहुत टूटा हूँ।

इस महान कथा को छोडने का कारण इतिहास था। जब मैंने भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया, इतिहासकारो का इतिहास की तिथियो पर मतैक्य नही था। मैंने इतिहासकारो से छेडछाड करनी उचित नहीं समझी। मेरे हाथ मे इतिहास की एक ऐसी कडी आई थी जो बहुत कमजोर थी। फिर मेरी रचना पर इतिहास की दृष्टि से अधिक चर्चा होती। इतिहास का वाद विवाद मेरी रचना का वाद विवाद बन जाता। मैंने इसे तिथियो के उस विवाद से बचा लिया है।

मैंने इसकी कथा की खोज के लिए कई पुराणो को भी पढा था। उनमे मुझे विश्वामित्र की कथा कुछ रुची थी। लेकिन, भारतीय सस्कृति मे जो साहित्यिक प्रचार है, मैं उसके कारण विश्वामित्र की कथा से विरत हो गया। वहाँ मेनका थी जो मेरे काव्य की सजावट हो सकती थी, लेकिन उसमे हर बार

विश्वामित्र का वशिष्ठ से टकराव हो जाता था। मुझे उन दोनों के अहं को अनावश्यक रूप से तूल दिया जाना पसन्द नहीं आया।

पुराणों से आगे उपनिषदों और वेदों में भी मेरे मन को सन्तोष नहीं मिला। वह युग मुझे नहीं भाया। मुझे खेतों और बस्तियों को रौंदते और हिनहिनाते इन्द्र के नील घोड़े अच्छे नहीं लगे।

मुझे अपनी कथा भारतीय लेनी थी। तब मेरे सामने कुछ जैन और बौद्ध ग्रन्थ आए। उनमें मानव जाति के लिए कई अच्छे सन्देश थे, लेकिन गृहस्थ जीवन का बहुत अपमान था। मैं घर छोड़ कर सन्यास धारण करने वालों की प्रशंसा में गीत नहीं लिख सकता था। मुझे मानव वंश की बेल को जड़मूल से नाश करने वाले सन्यासी अच्छे नहीं लगे।

मुस्लिम भारत में कई अच्छी प्रेम कथाएँ मिल सकती थी, लेकिन वहाँ मैंने जान बूझ कर प्रयास नहीं किया। मैं साम्प्रदायिक नहीं हूँ, लेकिन मैंने हिन्दी में जिस भाषा का चुनाव अपने इस काव्य के लिए किया है, मुस्लिम कथा उसके अनुकूल नहीं बैठ रही थी। मेरी हिन्दी सस्कृत नहीं है, ऐसे ही, मेरी हिन्दी फारसी नहीं होनी थी। लेकिन, मुस्लिम भारत की कथा में मेरी नायिका का नाम ही अरबी या फारसी के मूल का हो जाता। यही कारण रहा है कि मैं अंग्रेजों से जुड़ी ब्रिटिश भारत की भी किसी कथा को नहीं ले सकता था, क्योंकि मेरी हिन्दी अंग्रेजी भी नहीं रहनी थी।

मैंने आधुनिक भारत के नायकों को भी देखा। लेकिन, इनमें मानो प्रेम का अकाल पड़ा हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो संग्राम हुआ, उसमें प्रेम कथाएँ भी योगियों और योगिनियों की कथाएँ बन गई हैं। बिना प्रेम पक्ष को उभारे निरी देशभक्ति से मेरा गुजारा नहीं था।

स्वतन्त्र भारत में जन्मे युवक-युवतियों की किसी कहानी में से मैं कुछ ले सकता था—इस पर मेरे पाठक स्वयं ही सोच लेंगे। जब मेरी सन्तुष्टि वेदों में, उपनिषदों में, पुराणों में, जैन बौद्ध-ग्रन्थों में, मुस्लिम भारत में, ब्रिटिश भारत में, और स्वतन्त्रता के लिए संग्राम करते भारत में नहीं हुई, फिर भला, आज की युवतियों में से मेरी कम्पिला कौन हो सकती थी ?

यूं मेरी कम्पिला की कथा चकनाचूर हुई है। फिर भी, एक बात कही जा सकती है, कि यह मेरी नेति-नेति की रट ही कम्पिला का सर्वस्व बन कर एति एति है। मैंने यही बताया है कि इसमें यह नहीं है, और वह नहीं है, लेकिन ये सारे 'नहीं' इस पर अपनी गहरी छाप छोड़ गए हैं। ये 'नहीं' मिल कर कम्पिला है, जो एक भावात्मक चित्र है। इसमें आधुनिक युवतियों की बैल बाटम से ले कर पुराणों की अप्सराओं की कंचुकी तक है।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मेरा युग सौन्दर्य से खाली है। मेरे मत में, मेरे युग को ही नहीं, बल्कि हर युग को अपनी युवतियों पर गौरव होना चाहिए। लेकिन, मेरी समस्या कुछ भिन्न तरह की रही है। मैं यह दावा फिर नहीं कर रहा हूँ कि मैंने अपनी समस्या का कोई हल खोज निकाला है। मैंने अपनी समस्या को केवल अभिव्यक्ति दी है। इतना ही कविता के स्तर पर किया जा सकता है। मुझे अपने समाधान पर नहीं बल्कि अपनी समस्या पर गर्व है। मेरी समस्या महान थी।

मैं नहीं कह सकता कि मैं ईश्वरवादी हूँ या अनीश्वरवादी हूँ। मेरा दृष्टिकोण पारम्परिक है, या आधुनिक—इसमें मेरा ध्यान नहीं है। यह रचना क्लासिकल है या रोमांटिक, इसमें मेरा हस्तक्षेप नहीं है। यह प्रबन्ध काव्य है, महाकाव्य है, या मुक्तक काव्य—यह निश्चित करना भी मेरी समस्या नहीं है। किसी विशेष छायावाद, प्रगतिवाद या प्रयोगवाद से मेरा कोई सरोकार नहीं है। मेरी नई कविता वाली बातों से जुड़ने की या उनसे हटने की कोई इच्छा नहीं है। छन्द, छन्द मुक्त कविता—मेरी चर्चा का विषय नहीं है।

मैंने जो धरातल पकड़ा है वह मेरा अपना है। यदि कोई वाद की दृष्टि से मुझसे पूछे तो मैं जीवन कहूँगा, यदि कोई विधा की दृष्टि से प्रश्न रखे तो मैं एक अदायगी कहूँगा। मेरी सफलता और असफलता की कसौटी जीवन और जीवन का मिजाज है। यदि इसमें किसी को वाद की जगह जीवन दीख पड़ा तथा विधा की जगह एक अच्छी अदायगी का आभास हुआ, तो यही मेरी सफलता है।

मैं वाद और विधा की दृष्टि से कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं कह सकता हूँ कि मेरा कोई घोषित वाद नहीं है—ऐसे ही—मेरी कोई घोषित साहित्यिक विधा नहीं है। वाद की जगह कवि का एक मिजाज होता है, तथा विधा के नाम पर उसकी एक अदायगी होती है। इसमें मिजाज और अदायगी के सिवा मुझे कुछ भी नहीं कहना है। इसमें मेरा कहीं भी कोई दावा नहीं है। यह एक विनीत समर्पण है।

काल का कोई महत्व नहीं है, लेकिन यदि गिनूँ तो कम्पिला के इस बनते बिगड़ते खेल में मेरे तेरह वर्ष लग गए हैं।

—धर्मवीर

5 जून, 1987

एफ-115, प्रगति विहार,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003



कम्पिला

चित्र सूची

पहला खण्ड

पुकार
मनुहार

आजकल मन मे कुछ भी आ जाता है, बेसिर-पैर का,
जो कोयल को उडवाता है कोकिल की बोली बोल ।
खोखर मे छिप, ढुंढवाता है डाल-डाल, पात-पात,
सोच कर—तुम्हे ही बुला रहा है, तुम्हे ही पुकार रहा है ।

पृष्ठ 20



स्मृतियों का अंधेर, शास्त्र का दम्भ, तर्क का छल कैसा ?
घृणा सिखा निर्वाण दिलाने वाला यह दर्शन कैसा ?

—रामधारी सिंह दिनकर

पुकार

1

तुमने उसे पुकारा, पर कितनी शालीनता से हाय !
जो बीच मे पत्थर की शिला सी है, तिरछी-चकी।
यू, वह आगे कैसे बढ़े, विकार बन कर, बताओ तो ?

साफ बात है—अतिरेक उससे न होगा कोई भी।
यह उतना ही आगे बढ़ेगा जितना तुम माग दोगी,
और वहाँ तक कोई शिथिलता न पाओगी पुरुषार्थ मे।

दुष्कर कुछ भी नही मस्तिष्क के पहाड़ो पर चढ़ना,
हृदय के सागरो की गहराइयो मे उतर जाना भी।
बुद्धि के बीहड़ो से गुजरता आ रहा है बिना रुके,
सस्कारो के सहस्रा झाड़ झखाड़ काटे हैं, बिना थके।

धूप का खिला हुआ फूल तुम्हारी आशाओ का
मुरझाएगा नही, तेज धूप पड़ने से, और भी
खिलने लगेगा, छिटक कर रगदार, बहो तो,
सुस्वादु बन, चारो ओर, पानी घिरे तो।

मन की भाषा बोलो जिसे सारा विश्व जानता है,
जो दार्शनिक से भी निशा को दिन कहलवा लेती है,
प्रेम को आकार मिल जाएगा सुनते सुनते यू ही।

2

पाठ पढ़ाती जाओ—वह प्रेम का विद्यार्थी है।
तुम्ही ने बताया है ससार को तुलनाओ का सत्य,
कि हृदय का मोह और सागर की लहरें रोके नही रुकती।

तुम उसे अनुनिश लोरी गा कर सुलाया करोगी !
झूलो मे निज प्यार को हलराया करोगी !

पारिजात की गन्ध से उसका मन बहलाया करोगी !
अरी तुम, जिसे देख कर भूख भाग जाती है !

धरती पर उसकी चाँद का मुख हो तुम सम्पूर्ण,
तुम उसके जीवन की चिन्ता खाज हो जग में,
उसको हर रोग से बचा रखना, प्रेयसी उसकी !

उसकी बात सुनने को कितनी उत्सुक !
        साड़ी का पल्ला भी नहीं हिलता फिर।
यूँ तो उसकी वाणी भी नहीं रसधारा की,
        जो तुम निर्निमेष, निर्विकल्प उसे देखती हो !
हाथ जोड़ना कि सामने भगवान है कोई,
        मुसकराना कि उस पर अर्घ्य चढ़ रहा हो।
धूल भी चन्दन तुम्हारी प्रशंसाओं से,
        उसे समर्थों में समर्थ बना रही हो।

स्वागत, कि वह कोई किन्नर नरेश है !
        बैठना भूल जाना, पानी को भी पूछना।
हाथ सुराही की ओर बढ़ता देख,
        पता चलता है—पथिक तो प्यासा है।
फिर पानी ही पानी, पानी ही पानी, राम रे !

यही सौभाग्य है जो वह इतराता,
औरों के प्यार की खिल्ली फोड़ देता है।

कहाँ कवि की प्रेमिका ही बड़ी होती है।
        कविता प्रेमिका को ढूँढ लेने की है।
तुम्हारे ही विशाल नयनों का आकर्षण है—
        तुतलाती भाषाओं का अद्भुत चमत्कार है—
सूँड सी जंघाओं के साथ का सहवास है—
        स्तनों को वक्ष में चुभवाने का आनन्द है—
निचले होंठ को चूसने का मीठा रस है—
        बिताई गई रजनी के पिछले पहरों तक का सुख है।

3

आओ, आज अपरिचिता बन, पहचान लगा।

तुम्हारे घने काले लम्बे बालों में गुलाब का फूल!
आज हथेली में लाल-लाल मेंहदी रचा लाई!
मस्तक से छूट चन्दन नीचे आ गिरा,
सुहाग की बिन्दी के ऊपर पुनः रख लो, संभाल!

बासन्ती परिधान नयनों को बहुत लुभाता है,
पर तुम, लाल साड़ी—लाल कंचुकी पहन कर कब आओगी?
जी हो, शरीर को घेर कर खड़ी होती मूर्तिवत तुम!
चप्पलों के चिह्न बलुई देश में दुल्हन के सब!

साँवरी से उभरती गोरी गठन चाँद चकती-सी,
पाँवों में अमलतास देख लिया आड़ और तिकलों का।

वस्त्रों की सँवार विलोक नारी होने को मन ललचाता है।
कहा तो है—साड़ी बाँधनी उसे अपने हाथों से सिखाओगी,
ऐसी ही चुन्नटें, पलटे डाल, नीचे गोल गोल फिरा,
पल्ला आड़ा, कभी सीधा ले—कोई अंग दीख न जाए।
पर, तनिक घूमते, तुम्हारी नाभि दीख पड़ती है, सुन्दरतम!
जान-बूझ कर तो नहीं करती भड़काने को?

फिर चलो गर्मी में, तपस में, पाँव-पाँव,
हाथों से मुख पर साड़ी के पल्ले निकाल,
पकड़ कर गज भर चुटकियों से खींच।
हर बात सुघड़ भंगिमा है तुम्हारे साथ।

तुम्हारे साथ पैदल चलना, और सुनना—"धीरे धीरे"
स्मृति जगती है—गंधमादन पर विचरते,
कभी उर्वशी ने भी पुरूरवा से कहा होगा ऐसे ही।

हाँ, सभी प्रेमिकाएँ अपने प्रेमियों के साथ चलती,
पथ में कई-कई बार थकी होंगी, सुकोमल तन का,

जो थकना नहीं, प्रेमिया को पुष्प सिद्ध करना है,
हारो नहीं देना है, सबसे आगे निकाल देना है।

4

आजकल मन म कुछ भी आ जाता है, बेसिर पैर का,
जो कोयल को उड़वाता है कोकिल की बोली बोल।
खोखर मे छिप, ढुढ़वाता है डाल डाल, पात पात,
सोच कर—तुम्हे ही बुला रहा है, तुम्ह ही पुकार रहा है।

अब तो मन के कलसीरे कबूतर आकाश मे उड़ते हैं,
शुचिस्मिता के सग जीवन म उल्लास मचा रहता है,
सुबह शाम भावनाओ का उत्सव मना रहता है।

मचलता है, उछलता है, पक्षियो के पीछे दौडता है,
पकड़ता है, पखो पर हाथ फेरता है चूमता है, छोडता हूँ।

तुम्हारी सोच एकाएक नाचने को जी चाहने लगता है,
आज वह उठा और अपने उपवन मे ओस पर घूमा।

5

परसो तुम्हारे घर गया—तीथ की यात्रा करने।
बेमौसम पानी बरसा, स्वागत मे, चादर भिगोता।
गलियो मे लोग इकट्ठे कभी उसे देखते थे,
कभी आकाश की ओर मुँह उठा भूरे बादलो को।

याद आ रही थी तुम्हारी तन्मयताओ की तब,
—बाल सखियो के सग मोहिनी के नाच नाचे होगे
—हथेली पीट झूमते गीत गात खेल रचे होगे।

चिड़ियो का चारो ओर जलोत्सव सदा का जहाँ,
सुरम्य भू मेखला की परिक्रमा कर आया
हरीतिमा से कटी झील के किनारे किनारे चल।

उस सुबह एक गिरजे मे जा कर प्रार्थना की,
उस दोपहर एक मन्दिर की बगीची मे विश्राम किया,
उस शाम एक मुसलमान के घर का अतिथि बना।

सभी धीमानो को, श्रीमानो को, राम राम कर आया,
पीपल के पेडो को, जहाँ कही दीखे, शीश झुका आया।

6

कल फूलो को बिना सीचे, विलम्ब के भय से,
तुम महा घो अपनी अट्टालिका पर जा खडी,
कि शोभा मार्ग से गुजरता उसे देखोगी,
जैसे वह इस राष्ट्र का महान राष्ट्रनेता हो,
जैसे वह इस जनगण का महान लोकनायक हो।

तेजी से निकल गया, बिना ध्यान दिए, भूला वह,
हाथ की अँगुलियो को बाहर नचाता किसी धुन मे।

तुमने उसे देखा—तुम्हारा मन बासो ऊपर उछल गया।
सुनयने, कभी अकेला देखा करो, वन प्रा तर म,
कितना नाचता है, गाता है, किलकारिया देता है,
मानो कुबेर का धन सिमट उसकी झोली मे है।

पर, हाय रे दुर्भाग्य मन के चित्रकार का!
तूलिका बिना कुछ रचती चुपचाप पडी जो!
तुम वहाँ खडी कब से प्रतीक्षा जोहती होगी,
चम्पे की कलिया प्यासी मुरझा गई होगी,
गुलाब भी पानी के लिए तरस गया होगा।



मनुहार

1

मनुजातो की बात करनी बन्द कर दी है,
रम्ये अब वह तुम्हारी बात करेगा, स्वर्ण पक्षिणी की।
रूठोगी तो मनाएगा, पूछेगा नही कुछ भी,
अपनी पक्षिणी को केवल रो-रो मनाएगा।

आकाश के तारे नही ला सकेगा तोड,
निरायास हृदय राज्य का तिल तिल देगा।
भावना के सिवा कुछ भी नही उसका अपना।

कोमल से कोमलतम, त्वचा को देख, हाथ की,
कुछ नारिया चाहती हैं—वह उनकी पत्नी बन जाए।
गजगामी पौरुष देख कुछ कर दिग्दान का,
कई पुरुषो का लोभ है—वह उनका पति होता।

तुम क्या चाहती हो—क्रीतदास?
नही मानोगी और कहोगी—"राजहंस"।

2

हँसी आती है आए चली जाती है, रुको तो!
याद मे इतना ही रोना पडता है—भूल रही हो?

फिर मुख पर पानी छिडक कर चली नटखट!
फिर सामने मुक्की दे, चौंका कर हँसी, छाया सी।

गलती तो ऐसी करती हो
बिना गलती भी तुम्हारी थोडी पिटाई हो।

क्या कह गया!
हर बार अँजलिया मे घन पुष्प हो सुगंधित,

फेंकता रहे मन्त्र फूँक मुख पर दूर से,
पक्तियो मे सजी भरी टोकरियाँ रित जाएँ,
ढक जाओ नख से शिख रगीन कला चित्र सी ।

समीप जा झाँके तुम्हे सुमनो के झरोखो से,
पूजा भी हो जाए विनम्र तत्काल मन की,
जो नास्तिक बना फिरता है, बचा बचा, हाँ ।

पर, उस दिन, पल भर को ही, हँसी म तुमने,
क्या कह दिया था कि वह भी औरो की तरह है !
भला, यू भी कोई हँसी की जाती है
कि वह भी छल है, कपट है प्रपच है, धोखा है ?
सब कुछ लूट लिया तुम्हारी हँसी ने उस दिन, उसका

3

यहाँ तक आ गया है, तुम कहाँ हो, किस गह्वर म !

रुकावट कहा ? चलने का आरम्भ है टोको मत ।
जीवन की पुस्तक खोले बैठी हो सामने,
समझने को लोग कागजो की पुस्तक बाँचा करते हैं ।

पूछे, जो तुम्हे बुरा न लग तुम रूठो न,
—पुष्प ने खिलन, ग ध बिखेरन के सिवा,
कौन सा दूसरा काम किया है भू पर,
जो तुम करोगी, हवाओ के साथ बहन
नयनो को निरतर दिखती रहन के सिवा,
चक्की पीसने जैसा काम, हाथ पैर चला ?

केश-जाल उसकी ओर फैला बैठ जाओ ।
फिर वह जान, उसका काम जाने, तुम्हे क्या, कुछ भी हो ।

4

प्रतिमा के पैरो मे घुघरू बजेंगे,
वह सुन लेता है स्वल्प रुनझुन भी नूपुरो की ।

पाषाण को हृदय बन पिघलते-पसीजते कितनी देर ?
सुनते हैं, जड़ से ही चेतन है, प्रतीक्षा कर लेगा तब तक ।
सो, आसन जमा बैठ गया है, जटा-जूटो था, वाल्मीकि ।

और क्या कहा—"उससे बोलोगी न ?'
थमती प्रलय पुन जोर पकड लेगी ।
भगवान के लिए ऐसा न करो, न ऐसा कहो ही,
पता नही, पुराणो की प्रलय कितनी निकट है !

5

जानती हो ? जो वह जानता है,
—स्वय को काले रग का बताते,
कितने जोर से धमकाया था कि मारूँगी,
जो फिर कहा कभी ऐसा—काले रग का ।

चुन कर जीवन का पुरस्कार तुमने दिया है ।
कही देखने का काम तुम्हारी माँ पर होता
राधा की माँ की तरह काला बता छोड देती,
नीचा दिखाती सौ बार गव से कहती—
मेरी राधा तो गोरी है, चचल है छबीली है ।

सच सच बताओ, और भी, हृदयगूढ ने क्या कहा था ?
पगो ने क्या नही माना ? पश्चात्ताप किस बात का है ?
नही तो तुम क्या कर लेती ? दबी सी चुप क्यों रह गई ?
किस बात की, कहो तो, झुक झुक क्षमा माँगती हो ?

वह बताए—तुमसे भी परे जितना तुम बताती हो,
दीखता है तुम्हारे हृदय का फैला पूरा हिमखड,
प्रेम के विलोडित पानी मे तैरता नीचे-नीचे,
और वह सब उसका है ।

6

कहाँ चली गई थी इतने दिनो तक ?
मत आया करो, छोड कर, अकेला, ऐसे।

दुनिया ने तुम्हारे पास बैठने का समय कहाँ दे रखा है ?
दो क्षणों के लिए सबसे लड-झगड कर आता है।

और तुम चल देती हो कह—"पहले नही बताया, नहीं तो बैठती।"
भला, पहले से समय ले-कर-दे-कर एसे यूँ,
सृष्टि के रहस्य को भी यंत्र बनाओगी ? अच्छा लगेगा ?

और तुम्हारा कल क्या इतना हलका है,
जो आज की छोटी बात कल पूरी करोगी ?
तुम्हारा हर दिन महान है स्वर्ण प्रभातो समत।
आज की बात आज ही पूरी कर लो, थोड़ी देर और।

सारी दुनिया प्रशसा करे,
तुम न करो, समय पर कही चली जाओ,
शिराओ मे आग लग जाती है।
उसकी हर कला केवल तुम्हें रिझाने को है।

7

पता नहीं क्यो ? पर वह रूठा।
तुम व्याकुल हो गई।
तुम्हे कुछ पता है—वह क्यो रूठा ?

किसी को कुछ पता नही।
प्रेम मे रूठना अनिवार्य होता होगा,
नहीं तो, यह हुआ क्यो ?

स्यात, रूठने म जी लगता है, मनाए जाने मे,
मन-पुहुपो से, मधु चुम्बनों से, मदु भावनाओ से।
जी चाहता है, उर को उँडेल-उँडेल रख दें।

कभी-कभी जी में आता है—
छोड़ो भी जाने उसके जी में क्या-क्या आता है।
अपनी कहो—तुम्हारे जी में क्या आता है?
यही कह रह जाती हो—बहुत कुछ आता है।

8

किसी की एक लिखत कोई कितनी बार पढ़ सकता है?
उसने पचासों बार पढ़ा है।
तुम्हें ही पढ़ना चाहा है, बहाने से, बार-बार, पूरी को।

अब चित्र खींचती हो, और पूछती हो—बताओ क्या है?
साथ में कहती हो—पता तुम्हें भी नहीं—क्या बना है।

सृष्टि से कम रचोगी क्या? सृष्टि ही होगी।
कि तारागण ज्योतिपथों पर घूम रहे हैं
जिनके बीच बच-बच बिना टकराए जाना है।
दोनों धरती के चाँद-सूरज हों, यह मानो।

एक नीला समुद्र है नीचे फैला,
एक छितरे बादलों का ऊपर नीला आकाश है।

इस किनारे लम्बी लताएँ झुक झुक बढ़ रही हैं
दूर हरियाली भरा ऊँचा टीला है,
साथ साथ पाल नौका बही जा रही है।
लघुपात स किन किन दशा की यात्रा करवानी है?
उसके किन किन भूमियों पर चरण रखवाने हैं?
संसार की किन किन जातियों से परिचय करवाना है?
उसे क्यों आश्चर्यचकित कर रखा है, चित्र रच कर?
क्या यह सब उसके लिए ही है।

सजन उसके लिए रहस्य कम, वदना अधिक है
विकास उसके लिए अचरज कम, पीड़ा अधिक है,
देर न करो, शीघ्र मान जाओ, वल्लभे उसकी।

9

नन्ही-सी बच्ची बनना चाहती हो, उसके सामने ?
कहता है—"तुम हो, सच म, प्यारी-सी एक गुड़िया ।"

बच्ची के समान छज्जे पर चढ़, उत्सुक, गगन का उत्सव दिखाना,
और बताना—यह रानी है यह राजा, यह राधा है यह कृष्ण ।
और ये हैं कुँवारी मरियम, कबीर की माँ कुन्ती की धाय
अर्जुन की चित्रागदा, भीम की हिडिम्बा, दुष्यन्त की शकुन्तला,
आगम कथाएँ, नाग कन्याएँ, पेड़ की घास की पांडव की,
मत्स्य न्याय की, काम्बोज-गांधार की, कौशाम्बी की, उत्कल की,
वनवास काल की, कामरूप देश की, बंग की, उड़ की उज्जैन की ।

कुछ समझता है तुम्हारे अंगुली हिले संकेतों को,
कि वातायन पर टिकी छू ले सुकुमार कलाइयाँ,
तुम, पगों के बल समाधिस्थ झूम जाओ,
सम्भ्रम से बलिष्ठ करों म पुष्प देह यह,
वक्ष पर झुक कर पुष्प की तरह पूछे—क्या बात है ?

सच भी है दूर-दूर, तोते मैना की तरह,
अधरों को भिगा भिगो बतरस के फूल बरसाना,
चूमा को जी चाहना, रुक जाना, लालसा का,
चिड़ियों को पिंजरों मे बन्द करके चुग्गा देना,
सिखाना—प्यार प्यार—दुहराना मीठे स्वर से,
कब तक चलेगा भद्रता का संकोच उर म ?

10

बतरस से कविता नही सजती, बता दो सजनी, कैसे सजती है ?
हाथ पकड़ सौंदर्य के देश ले जाओ न ।
नन्दन कानन के कोने-कोने म घुमा दो ।
देखो, पूछ रहा है, जीवन का मधुरतम गीत सिखा दो न ।

समय पाँव पाँव चलता है, कभी खींचे खिंचता है,
रुक जाता है, कभी पीछे चलने लगता है, उलटा यह।
इससे कदमताल उसके वश में नहीं एक जगह खड़े हो,
वह आ रहा है तेज आँधी की तरह—वह जीवन है।

तुम्हारी लताओं से एक भी कच्चा द्राक्ष न तोड़ेगा,
तुम्हारे कचनारों से एक भी अधखिली कली न नोचेगा,
जो फल स्वयं चू जाएगा, भाग्यवान बन उठा लेगा।

कब ऊँचा हिम शिखर मृदु जल बन नीचे बह चलेगा ?
झरनों के झागदार निर्मल सलिल की चाह है, द दो न।

11

मन को तरसाना किस वैरिन से सीखा है !
देर होते कौन सा द्वन्द्व मच रहा है, बताता है।

जी चाहता है तुम्हारे अंगों को गुदगुदाए, थोड़ा तंग करे
—यह उसमें सृष्टि की कौन सी चाह है, पशुपन की ?
नाखून बढ़ा तुम्हारी छाती पर मद्धम मद्धम नोचे,
—यह कौन-सी भूख शेष है किसी पिशाच पितामह की !
दाँतों से तुम्हारे कपोलों को दबदबाए और काटे,
—अभी तक भी उसमें कौन सा भेड़िया पल रहा है !

तुम्हारे न बोलते ऊदबिलावों की बोलियाँ सुनता है,
उद्विग्न, खुद को कोसता है—'हाय रे हाय वह कोई राक्षस है !"
बोलो भी, द्वन्द्व को 'हाँ' कह कर मिटा दो न, ऋजुमने !

12

नियमपूर्वक सूरज आज भी डूबेगा,
आकाश में चमकेगा चाँद सारी रात, आ जाओ।

दिनों के भटकाव के बाद तुम्हारी याद !

पुकार उठा, आज फिर, व्याकुल !
रुकने की कोई बात नही, आ जाओ ।

भूला नही है, जो नीचे न आ,
उस दोराहे पर खडी उसे देखती न होती,
कुछ और हो जाता, नकार भी !
कब से खडी थी अकेली यू उस दिन ?

आओ, और हँसो वय के सोलह शृगार करके ।
मुसकान, उसकी थकान को मिटान, तुम्हारी रीभ मे,
उसकी उवशी ! उसकी शकुन्त ! उसकी रम्ये ! अप्सरे उसकी !

सोचना मत, देखो केवल, आ इतना—
आज फिर लिपट गई रजनी आँगन के खुले द्वारों पर,
गलबाँहें ले, भावातिरक, कुछ कहती सुनती !

बचपन के खेले साथी बूढे हो गए सब शरीरो से,
वह कब होगा ? चिर यौवने ! बाले ! सुन्दरे !
जो मारा है पतली झिल्ली का कटाक्ष बन,
कोरो तक दाब देने की चितवन ने, दाएँ बाएँ फिरते,
विस्मय मे मुख के लम्बाने मे, या और भी ।

होडाहोड, धरती का राजा बना है, होडाहोड—महारानी !

13

चलता फिरता,
जो मनुष्य धरती पर दो गज ऊँची मिटटी का ढेर ही,
जो धूल बन चाद तक उड आया,
आँसुओं को तल्लीन हो कर तौलना चाहता है ।
तुम्हारे दु खों मे प्रकाश, तुम्हारी छाया म रगीनी ।

और किसके घर डालता ? अपने भी,
लोक-परलोक के सारे दुख तुम्हारे द्वार से आया है ।

अब तुम कैसे मना करोगी, वचनबद्ध,
तीर्थ पर जब भी आएगा, तुम्हे द्वार खोलने पड़ेंगे !

अब आकाश के देवताओं को मात हो,
        एक दूसरे को पा तुमने,
भू पर स्वर्ग बसा लिया है जो यह ऊँचाई है।
वही पराग जो कभी अलग रह फूलों में खोजा था,
भौंरे और तितलियाँ मँडराती, गंधों का अजस्र स्रोत,
तुम्हारे भीतर से फूट रहा है, तुम देखो तो।

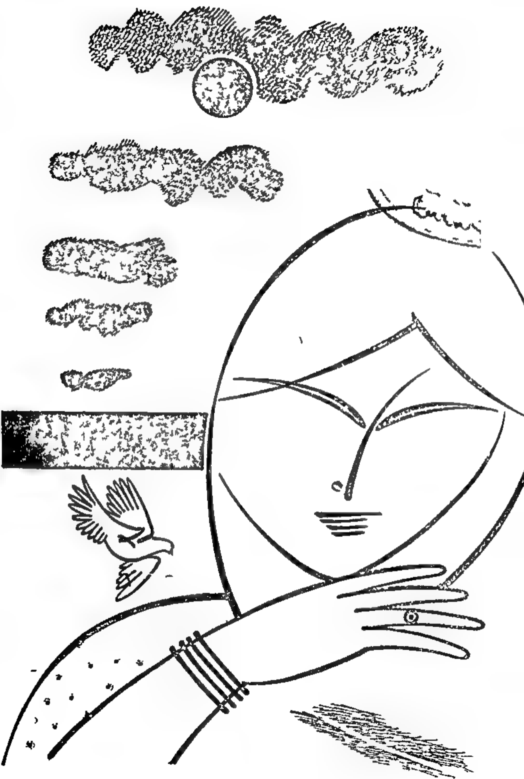


दूसरा खण्ड

सत्य
विराट
संयम

उसे तो बताना है कि तुम सुन्दर हो, तुम्हारी बातें सुन्दर हैं,
तुम्हारी पलकें और भौंहें—हाथ की रेखाएं सुन्दर हैं।

पृष्ठ 35



समझ लो मुँह से फूल झरते हैं। कानो मे वीणा बजने लगती है। मधु और मदिरा मे वह मिठास कहाँ, जो उसकी बोली मे है। कोयल सुन ले तो कूकना भूल जाए, भौंरे सुन लें तो गुंजार भूल जाएँ।

—लक्ष्मी नारायण मिश्र

सत्य

1

उसमे हर सच सहने की शक्ति कही गई है, और अपार,
तुम कह दो हृदय पर छुरी-सी फेरती हुई।
उसका काम है—कैसे सभलेगा—इसी क्षण—बिना मुह फेरे।

निस्संदेह, प्रलय को देखने की उसकी आँखें मनु की हैं।
आ रहा है, अगल-बगल चोटें खाता, आज तक,
दु ख से डरता नही, कि रो उठे, दया कर,
समझता है—"इसके योग्य एक पुरुष हूँ चुना हुआ,
इसका मित्र, पुराना मम, सदियों का जानकार, भेदी।"

2

उसे तो बताना है कि तुम सुन्दर हो, तुम्हारी बातें सुन्दर हैं,
तुम्हारी पलकें और भौंहें—हाथ की रेखाएं सुन्दर हैं।

कमर तक लहराते तुम्हारे बाल मनोहर
चचल पग उठती की चाल लचकीली।
अठखेलत नयन देखे हैं विशाल,
हँसत हुए वरदन्तो की शोभा भी।

तुम्हारे पोर-पोर से पखुडिया का स्पश होता है,
तुम्हारे रोम रोम से गन्धो का सुवास फूटता है।
पास बैठते मन की समाधि साथ चलते साँस थकता नहीं है।

3

प्रम से तपस्या भग होती है, सुना यह था,
प्रम ही तपस्या बन गया उसके लिए क्यो?

कभी पूरी न होगी शरीर की साधना खंडित खंडित,
उसे धरती से ऊपर प्रेम का देवता माना गया है,
जो सजा मिल गई है जीवन भर तड़पते रहने की।

देहधारी है दिव्य बनने को जी चाहता है, क्या करे ?
मनोराज्य के गूढ़देश में प्रवेश करे, कैसे करे ?

देह की दृष्टि से वह तपस्या कर रहा है,
मन की दृष्टि से किसी भट्टी में है।

4

ऐसे प्रायश्चित मत करो जो प्रभाव डालते हैं,
प्रायश्चितों में शक्ति तुम्हारे कारण शेष है।

तनिक भूल होने पर, या किसी चूक के घटते,
जो चूड़ियों भरे खनकते हाथों से उसे डपटना चाहे,
फिर उन्हें मलमल पछताए अधखुली मुट्ठी रख,
लाल लाज से गड़ जाए कि तुम्हारा उस पर हाथ उठ गया,
सिर को धुन ले बार बार क्षमा मांगती कौन होगी ?
भू पर तुम्हारे जैसी दूसरी मूरत कहाँ से लाएगा ?

सारी विद्वत्ताओं सारी शक्तियों के बाद भी टूट,
मनुष्य का जी चाहता है—कोई उससे बड़ा हो,
जहाँ वह झुक जाया करे—किसी की मान लिया करे,
अपनी न चलाए—हाथ जोड़ता हार जाया करे।

तुम्हें छोड़ कोई भी उसमें बड़ा नहीं रह गया है।
अधिकार उससे घबराता बोलता नहीं है
कर्तव्य उससे आंख नहीं मिलाता,
निधि उसके सामने निधन बनी खड़ी है,
सिद्धि द्वार पर भिखारिन पड़ी है,
विश्व सौंदर्य विकलांग हो गया है।
धर्म, ईश्वर तक, दर्शन सब उसकी रौंद में हैं।

इसलिए, बडी बनी रहो जिस रूप मे भी, जहाँ भी ।
वह तुम्हे फिर खोजेगा सृष्टि मे नए सिरे से आरम्भ कर ।
टकराएगा वन-बीहडो के बीच, कठ फाड,
पत्थरो पर सिर पटकेगा कि तुम कहाँ हो, कहाँ हो ?
तुम तक आएगा निज पखो को जलवाता मरुभूमियो से,
चोच मे तिनके लिए, क्षत विक्षत, हाँफता—तुम्हारा प्यार ।

उसकी बडी उससे बडी, सबसे बडी उसकी '
एक अच्छे पक्षी का यू जी लगता था ।

5

जब सजा की बात चली, डरती पूछ बैठी,
"—जी, मुझे कौन-सी सजा दोगे—मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ ?"

सुन कर कि वह तुम्हे कोई सजा न देगा, केवल दूर चला जाएगा,
खोल बैठी सारा रहस्य— 'मेरे लिए यही सबसे बडी सजा है,
कि तुम मुझसे दूर चले जाओगे, कि तुम मेरे पास न बैठोगे ।"

"तुम कही मत जाना श्याम, यही रह कर सजा देना कोई भी,"
—सुन कर, दण्ड नही, पुरस्कार दे दिया, लो उसने
कि हृदय मे भरती उमग उसकी है अधरो पर फूटता उल्लास उसका है ।

6

प्रेम मिल रहा है—शेष दु ख दना है ।
उलझनो मे फाँस, सकटो मे झोक, विवश विवश
जघन्य पाप,
हाय, जो अभिलाषा उसकी नही—आत्महत्या की ।

लम्पटो को न्यायाधीश बनने का अवसर !
निवस्त्र कर, कलमुहे, तुम पर हँस कर जाएँ ।
उस तर्क का जिसका कोई लक्ष्य नही है,
उस धर्म का जिसका कोई आदर्श नही है,

उस दर्शन का जिसकी कोई दिशा नहीं है,
उस ईश्वर का जिसकी कोई पहचान नहीं है,
कि वे एक एक आएँ, और दुष्चारिणी घोषित करें !
व्याप्त छिनाल शकाएँ, पगो मे बेडियाँ डालें !
परिव्याप्त कामुक घृणाएँ, तुम्हें गला घोट मारें !

7

तुम हँसो, वह तुम्हे गम्भीर क्यो बनाए ?

आकाश ने चन्द्रकलाएँ दिखा तो दी हैं,
नयन मीच नटी सामने नाच तो गई है,
हाथों के घूघट कर लजा-लजा उससे ।

और क्या, कि मनवाता फिरे, औरो से,
जैसे विश्वास न होता हो उस स्वय पर ।

और क्या तुम्हे वेश्या कहलवाना चाहे बाजारो की ?
जो वधिको के हाथ तुम्हें बलि बना छोड दे,
कि निखट्टू हँसी उडा तुम पर पत्थर फेंके ?
या जान बूझ शत्रुओ क जाल चगुल मे झोक दे,
कि विषैले नाग तुम्हे डस लें, और छोडे नही, उफ री !



विराट

1

अब यू भली बन, अधिकार से,
यह तुम पूछती हो कि दुख किस बात का है ?
जलाने को व्यग्य भी कसने आरम्भ !
सारी कल्पनाएँ लूटी, औं', सारे स्वप्न उलटे सीधे !

सच सच बताओ, यह क्या किया,
जो आज अपने हाथ पर उसका हाथ रखवाया,
और नोच डाला उसका उर, उसे चुप कर,
धडकनें देखती रह कर नाडी की कि कब मरेगा !

पानी की प्यास पक्षी को कब सताती है ?
तुम्हारे पास बैठ कर भी वह थकता है।
कहाँ जाए ? कहाँ जाए ? कहाँ जाए ?

मन पापी हो गया, कुछ न मिला,
कलक की कमी थी, पुत गया,
गिरने की कुदृष्टि घृष्टता पूरी हो गई।

2

विद्वान नही है, अनपढ हो गया है,
शब्द का अर्थ समक्ष मे नही आता,
और तुम बोलने लगी हो अधूरे वाक्य तौल-तौल,
समक्ष नही आते हैं जब पूरे भी।

प्यार के बिना भाषा बुद्धि पर बलात्कार है,
वक्ष से सींची जाती है, लिटा कर, तुतला कर, या।

गूगा बना छोड दिया है, सारहीन,
चुगने को पशु धरती पर,
मैं मैं करता, रम्भाता, चिल्लाता।

शायद इतना ही है कि उसे तुमने,
मिट्टी का माधो समझ लिया है,
बिना इच्छाओं का ढेला गढ़ा अनगढ़ ।

मुख से शाप न निकल जाए,
सारा ससार हाय हाय कर उठेगा,
कि घर म रख कर तुमने उसे प्यासा रखा है,
जबकि तुम जीवन की जमुनोत्री हो,
जबकि तुम यौवन की गगोत्री हो ।

3

भोली तुम हो पर कैसे, तुम्हारी बनावट जटिल है !
समझ म न आ सकने वाली पहेली एक ।
तुमने उसे चाहा था, या उसकी बातो को ?

तुम कौन हो ? उसकी खोज क्या है ?
दोनो मे अ तर तो नही रह गया ?

उसकी खोज कोयल की थी, पपीही की,
प्यार न करती, प्यार जसा कुछ कर लेती ।

अपनी खोज पूरी हो चुकी थी बहुत पहले उसकी,
रह गई थी निर्वाण के बाद की आधी खोज,
तुम्हारी खोज, रक्त की खोज, आकार की खोज ।
भटक कर रह गया मरु भूमि की तपन मे, पर !

4

उसके पख जलन लगे हैं, बचाने दो डैनो को ।
हटो—हटो—हट जाओ उसके आगे से,
यह पक्षी अभी भी पूरा सभ्य नही बना है ।

मस्तिष्क ठुका पडा है, हृदय चुका पडा है, जीवन रुका पडा है,
पैर के पजो क नाखून नहीं काट रखे हैं अभी तक उसने ।

यूं तो सरोवरों का पानी रित जाएगा !
मोर कहाँ नाचेंगे ? सारस कहाँ बैठेंगे ?

भय लग रहा है कि हृदय से नही,
तुम तर्कों से बात समझाने लगी हो।

अब उपनिषदों की छात्रा हो,
माँ हो, बहन हो, पुत्री हो, पत्नी हो,
कुछ हो, प्रेमिका नही हो।

और वह अभी भी भाव-पुष्प रस का लोभी है,
हृदय की चाह है, ममत्व है, गुजन है, वदना है।

अन्तर नही है तुलनाओ मे, वैसे,
उतना पाप तुममे भी है जितना उसमे है,
उतना पुण्य उसमे भी है जितना तुममे है।

6

जहाँ तक तुम हो, कोई नही जा सकता,
मत्यु से सामना किए बिना कोई भी।
क्या मत्यु जीवन का उददेश्य है ?

प्रेम का समाधान प्रेम मे हो, पत्तो से टपकती ओस जैसा।
पुन आत्मिक दशन की दौड क्या ?
तुम्हारे होते, क्या तुम मर गई हो ? क्या तुम पत्थर हो ?

लँगडे-लूले, अधूरे-ओछे समाधान रुच नही रहे हैं
कटे फटे, छिते पिटे, मुडे-तुडे कोई उत्तर नहीं हैं।

उसका उपचार तुम बातों, वह नही,
उसकी समस्या तुम थी, वह नही।

आत्मा का समाधान पत्थर पर लकीर है,
तुममे भी तो आत्मा थी—तुम क्या न बनी ?
हृदय से सुनसान निरी अनात्मा हो ?

तुम्ही ने आश्वस्त किया था—"अब मैं हूँ, निश्चित रहो ।
"मृत्यु की बात करनी बन्द कर दो ।"
क्या तुमने वह झूठ समझाया था ? क्या वह तुम नही हो ?

"मृत्यु के सिवा सोचने को कुछ और नहीं है ?"—तुमने पूछा था।
अब क्या उत्तर दें, कि वह और क्या है, मृत्यु के सिवा ?

7

और वह कौन है—धरती पर एक मात्र प्रेमी ।
दूसरा है कौन, उसके सिवा, पैदा जग में ?
यह झूठ है, प्रपंच है, मनगढ़न्त है !
वही है, वह वही है, वह वही आकार ।

और वह स्वयं प्रेमी है—किसी प्रेमी के प्रेम का भाट नहीं,
वह स्वयं राजा है—किसी राजा के वंश का कथाकार नही ।



संयम

1

पर,—"पगली तो मैं होऊँगी"—तुम्हारे मुख से सुन,
—"कि मेरे तोते ने मुझे समझा नही, भर चोंच मार दी,"
दौड़ पड़ा है मानसिकता के सारे प्रलोभनो को भल
जैसे तुम मरने चल पड़ी हो निराश हो किसी कुएँ मे,
तालाब मे, पहाड़ से कूद कर खदक म, या समुद्र मे ही।

यही मार है कि निश्चित नही होता कुछ भी,
कि तुम उसे किस रूप मे चाहती हो, कम्पिले।
वह तुम्हे पापिनी घोषित नही करता है
केवल अपनी वेदना का राग अलापता है,
नखो से निज वक्षस्थल की धरती कुरद कुरेद।

फिर नए सिरे से चलने मे तुम्हारी तडप समझ में आई है,
जो सृष्टि बन सामन खडी कह रही हो—"मैं तो सरल हूँ,
जटिल तुम हो जो मुझे समझ नही पाए हो, अभी तक।'

जान गया है रुँधे कठ मे हिचकियाँ भर आने से
तुम्हारे कहने से—"सब व्यथ गया"—तुम्हारी पीडा क्या है।

नही कुछ भी अकारथ नही जाएगा, सम्पत्ति बनेगी दग्धारा भी।
लो फिर कोई वचन लो, हाथ फैला कर अच्छा लगता है, थामो,
प्राण से निकलने मे सुख मिलता है, नई सी बात है, सवथा नई।

इस प्यार के हवा और पानी साक्षी बनना चाहत है,
जीवन की कठिनाइयो मे असम्भव था।
कइयो को अभी स चकमक चौधा रहा है,
उडने बादलो के स्वप्न से दीखत हैं, चोर भोर।

2

उम पता था कि पूछोगी एक दिन अवश्य,
कि वस्त्र कौन धोता है—धोबी या स्वय ?

कि भोजन कहाँ से लेत हो ? पानी कौन पिलाता है ?

तुम्हारा जो उसकी धोबिन बना को चाहता है ?
तुम उसके रसोई घर की स्वामिनी बनना चाहती हो ?
सग रह दो सेवा उठाना चाहती हो ?
उफ, बिना वन हीं सब कुछ बनना है, हाय री !

यही कहानी है, कहानी की वेदना है, मर्मान्तक,
कि सौन्दय को आत्मेतर का ध्यान नही रहता,
त्याग यही ध्यान धरती पर बढ़कर रखता है।
सौन्दय की अपना गव होता है, कहने को, उचित भी,
त्याग को ममतर का सुख है, सच पे, सही भी।

अपेक्षा किए बिना दशा की,
सौन्दय धड़ से शीश उतार देता है।
त्याग दूसरे को माग छोड़ देता है,
जाने बिना दिशा भी।

यह भी उपाय है, जीने की रीति है, खोज लेने की,
—हाय-हाय से बिना हाय-हाय तक की अन्तर्यात्रा—
कि प्यार मे प्यार का आकार भूल जाना पड़ता है।

3

शब्द छोटे पड गए हैं मौन साधन हो गया है,
जो इस पीर को छुपा छुपा दूर दूर रहता है,
"कि छुओ मत, चूमो मत, रौंदो मत, पूजा द्रव्य को।"

क्या बन गई पत्थर का खुरदरापन-सी ?
बहरी-गूँगी सी अब बोलती भी नहीं !
दृष्टि उठा उसे देखती भी नही होगी,
जैसे वह तेरा अपना न रह गया हो !

उससे किसकी पूजा करवा ली री !
तू तो निराकार है।

जी पर जोर पड़ता है सोच-सोच,
कि यह उसकी चाह नहीं थी,
कि यह उसकी प्राप्ति नहीं है।

4

कहा करती हो कि जानने से दुःख कम हो जाता है।
क्या यह तनिक भी कम होता है?
या और भी बढ़ जाता है कि सब अधूरा रह गया।

ज्ञात है कि प्रेम ज्ञान में सहायक होता है,
पर, ज्ञान प्रेम की सहायता करेगा,
यह कौन सा पाठ पढ़ाना चाहा?
दार्शनिक दुनिया में निरा नया पाठ है!

होनहार हो कर रहती है, कुछ भी सोचो, कुछ भी मानो, टलती नहीं!
समक्ष को पंगु बना शाप पूरा उतरता है!
सौभाग्य कभी अप्राप्त रह जाए, दुर्भाग्य सदा घट कर रहता है!

जो मनुष्य चाहता है, वह चाह है, भाग्य कैसे?
और अनचाहा सदा से दुर्भाग्य होता आया है।

जितने सुख के क्षण थे, सुख के बना कर जीते,
बुद्धि से मन्त्रणा, विवेक का हस्तक्षेप, ठीक नहीं रहा।

मिल लेते चिर प्रतीक्षित, मधुर से मधुर,
वक्ष से वक्ष मिला प्राण ठण्डे कर लेते,
सध जाते सितार के तारों की तरह।

मन बेईमान हो जाता बाँहों में कसते हुए,
कसे जाते हुए, प्रयोजन पूरा हो जाता सृष्टि का।

समाज को निभा तो जाओगे, पर उतना ही,
तुम प्यासी रह जाओगी, वह प्यासा रह जाएगा,
शरीर प्यासे रह जाएँगे, आत्मा प्यासी रह जाएँगी।

शायद, सच तुमसे बडी चीज नही है,
शायद, प्रवाद निभाने लायक नही है।

तुम निभा दोगे, पर इन्हे कोई भी तोड देगा।
कायर तुम भी नही, पर हार्दिक प्रसन्नता भी नही।

5

एक उपाय और था—"तब तक जिओ क्यो ?"

हाँ, किन्ही दो प्रेमियो ने घर बसाने की कब सोची है ?
तुम भी खीच लेते भविष्य को, बना देते वतमान,
कोड मे चारा अधरो को मिला जिसे चुम्बन कहते हैं।

कौन-से प्रेमी बूढे हो कर मरे हैं ?
किनके प्रेम को सर्वांग सुख मिला है ?
किनकी बाँट मे अधिक अवसर आया है ?

फिर वह तुम्हारा हृदय क्यो तोड देता ?
मिलन केवल क्षण है, पर युगो से भी गहरा है।
वही तीव्रता मिल जाती, उसका आशय था।

एक उपाय और भी था—
शाप को सहते स्वय न रह जाते,
कुछ और हो जाते—अन्य पुरुष सर्वनाम।
शायद, दु ख का अथ कुछ घट जाता, सीमा तक।

उतने भी नहीं जुडे अभिनय करके,
नाटक मे पात्र जितने झूठमूठ जुड जाते हैं।

6

वैसे, पक्ष कई कई ठीक हैं कि जैसे,
शरीर की जैव वासनाएँ न रुकते,
वह प्रेम नहीं, उस पुरुष मे, उस नारी मे।
प्रेम है—कुछ लोकोत्तर, कुछ बढकर।

और प्रेम की ललक कौंधती रहनी चाहिए उर मे,
प्रेम से मुँह फेरे सन्यासी इसमे कहाँ ठहरते हैं ?

एक दूसरी बात भी ठीक है अनुभव सिद्धो की,
कि प्रेमिका पुरुष के स्वस्थ होने का चिह्न है,
प्रेमी नारी के हृदय रोगिणी होने का प्रमाण ।

अगली बात भी उचित है, सदुपयोग की,—
कि सुख तभी सुख है जब उसका लाभ उठाया जाए,
दु ख का लाभ उठा लिया जाए, वह भी सुख है ।

7

और यह प्यार पिपासाओ का,
कि मैं तो तुम्हारी सेविका हूँ—तुमने कहा,
कि मैं तो तुम्हारा किंकर हूँ—उसने कहा,
इसकी कहानी गहन है, अपार है ।

जो सुख भोगियो को नही मिला भोग भोग,
दास दासी बन कर पा जाओगे, बिना भोगे ।

कुछ लोगो को घड़े भर अमृत मिला, और वे मर गए,
कुछ ने यह गरल पिया, और जी गए ।
रसायन बाहर कहा, तुम्हारे कण्ठो म है, पहले से ।

अब जन्म लेने की कौन चाह शेष रह गई ?
फिर भी, जन्म लेना मनो मे, मनोदशाओ म।

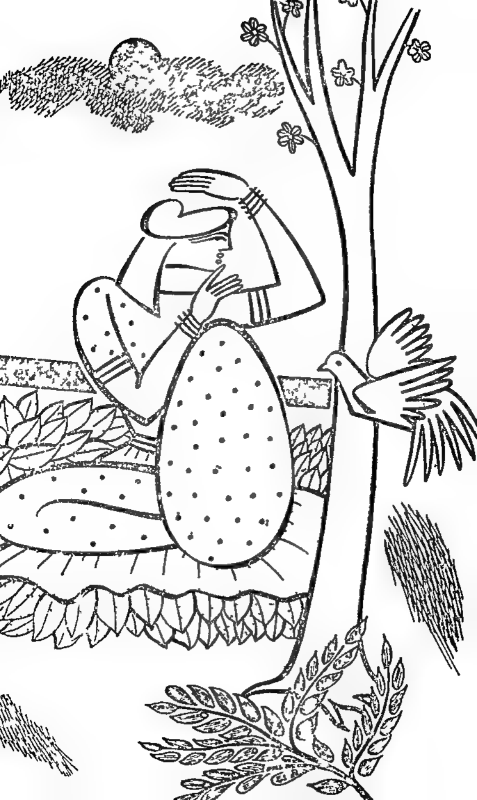


तीसरा खण्ड

स्वप्न
विचार
भावना

कुछ पूछ भी बैठी उसकी बात, दु खो की ?
जिनके पास प्यार मे क्षण नही बिताने को,
आठो याम घृणा मे बिता रखे हैं, भू पर !

दिए हुए दु खो को भगवान के कैसे कह दे ?
मरने की भूख को नाटक कैसे मान ले ?
प्रकट की रहस्यमयी व्याख्या कैसे कर दे ?
पृष्ठ 64



जो घनीभूत पीडा थी, मस्तक मे स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन मे आँसू बन कर वह आज बरसने आई।
—जय शकर प्रसाद

स्वप्न

1

तुम्हारे पास आया—तुम्हारी सखियाँ मिलीं।
उलटे पाँव चला,—वे खिलखिला हँस पड़ी।
सन्देह हुआ,—तुम वहाँ फिर न मिलीं।
लौट पड़ा उदासी में, व्यथ पैर दुखा।
तभी तुम्हारी हँसी सुनाई पड़ी कानों में।
दौड़ पड़ा—सखियों ने तुम्हें फिर छुपा लिया।

चक्कर लगाने लगा—सभी घूमने लगे।
रास लीला मच गई—तुम्हें पकड़ न सका।
तुम्हीं ने तरस खा पीछे बाँह से छुआ—"जी"।
सखियाँ मुँह फुलातीं रूठ गइ तुम्हारी तब,
घूम कर उसकी बाँहुओं में भर गइ जब तुम।

कोई नहीं पकड़ सकता, भूवासिया में से,
पेड़ पर घूमती गिलहरी को कोई भी दाशनिक।
ऐसी आँख मिचौनी मत किया करो, चचल, उससे।

2

तुम कमरे मे आइ, वही सो गई उसके पास, निस्संकोच,
धवल धुले वस्त्र पहन, शय्या पर, दूसरी ओर, शान्त।

और तुम कुन्ती की तरह डरना नहीं, प्रवाद के सामने, साहस रख,
दोनो शिशुओं को उसके बता देना,
कर्ण नही, महाभारत इस बार कर्ण का बाप लड़ेगा, वह लड़ेगा।

न अब क्षमा मिली है, न तब मिलेगी, केवल,
मन को मसोस कर रह जाओगे भीतर घुट कर।

दीमक खा जाएगी चन्दन के वक्षो को मिटटी चढा चोटी तक,
किसी माली को चिन्ता न होगी सुगन्ध की होती दुर्दशा की।

शरीर की कहानी शमशान तक है—आग मे भड भड होने तक,
और आत्माओ की यात्रा का किसी को क्या पता, मनुष्यो मे से ?

घूम कर यही लौटना है, अनित्य की नित्यता पर, कीली पर,
कि क्षण की ही कहानी है, युगो की तो गाथा है, कौन सुने ?
मन से दूर कि ट्टी जाल व्यालो की, तिमिंगलो सरीसपो की,
जो सवत्सरो तक जीते हैं, लाख वर्षों तक पत्थर बढते हैं,
और करोडो-अरबो वर्षों तक नक्षत्र और ग्रह चलते हैं।

3

प्रेम का अन्त नही—नैतिकता बची हुई है।
लोग पूछते हैं—यह कैसे सम्भव है ?

रात दिन की बात है—चाव कभी मिली नही,
केवल तुम्हारे कपोल हाथो मे आते हैं, अब भी।

फिर चूकता नही, उन्हें थपथपाता है कभी इधर से, कभी उधर से,
पर चूमता नहीं, मर्यादाओ मे रुका, शाप के भय से उतने से।

प्रेम इतना ही होता है तुम जानती हो, उसके जीवन मे,
यथार्थ से एक ही चरण आगे हो सकता है, दो नही।

उसका प्रेम बढ चला है, साफ बात है।
कही तुम ओझल न हो जाओ, मनस्विनी!

4

क्या, प्रेम उसका ? और घमण्ड तुम्हारी, यह कैसे ?
उस प्रेम मे आग लगा देगा जिस पर उसका अधिकार नही।

क्या किया जो वेश बदल उसका मुख चूम लिया ?
उसे सुख तो मिला गर्म गर्म श्वासों का,
पर क्षोभ कितना है—जैसे वह पुरुष न रह गया हो।
यह दागती-दगती-उबलती पहल उसकी होती।

और कहती हो कि फिर चूमूंगी, मानूंगी नहीं।
तो उसकी भी सुन लो—वह जा रहा है समाधि में।
किसी सिद्ध से, योगी से, कम तो नहीं संयम में ?

ओह, फिर सुबकने लगी दीवार से लग कर।
कमिले, सच बताओ—तुम चाहती क्या हो ?
क्यों थकाती हो ? और फिर क्यों चलाती हो ?
क्या डराती हो ? और फिर क्यों लुभाती हो ?
साफ-साफ कह दो, हां या ना में से 'हां' ही, हां।

जितनी खोजता है, गहरी होती जा रही हो तुम,
सृष्टि की तरह—पुष्पित, पल्लवित, अंकुरित-सी।

5

इस बार तुमने साड़ी छोड़ी, स्कर्ट भी, अर्द्ध-साड़ी भी।
किसी नए युवक के साथ नई युवती बन गई,
बैल बाटम में, नंगे हाथ, बिना चूड़ियों के, माला के।

युवक के साथ तस्करी के किसी धंधे में,
नगर से दूर वनप्रांत के बंगले में ठहरी थी।
वह वहां आ गया घूमता नौकरी की खोज में,
और तुम्हारा सेवक बन गया नई वेश भूषा में,
अर्थात्, इस बार तुम्हारी तरह वह भी बदल गया।

एक दिन उस रखैल जैसे तुम्हारे दुर्मुख पति ने,
मदिरा के, स्वर्ण के, या ड्रग के किसी धंधे में,
एक सुंदर युवक और कोमलांगी युवती का,
कड़ी धूप में तीन घंटे पैदल मार्च करवाया।

यह उसे अच्छा नही लगा, तुम्हे भी और।

अब कुछ भी कहो कि तुम्हें अभिनय नही आता,
—स्वभाव में रमे रक्त की नैतिकता मिट चुकी थी।

तुम्हे एक बच्चा हुआ, बँगले मे, बिना परिचारिका के।
तुमने नाम ले कर बताया—"विक्रम, यह तेरा है।"
तुम्हारा रूप तत्काल सस्मृत हो आया कम्पिला का।
अब तुम साधारण शालीन वेश भूषाओं मे थे, दोनो।

शिशु अरब दशो के बाल राजकुमारो-सा था,
पक्षियो के रग बिरगे पखो की खुली जाकेट पहने,
बहुत चचल, बहुत होनहार, बहुत सुदर, बहुत प्यारा।

बाल क्रीडाएँ अद्भुत थी।
गोद मे, कभी बाँहुओ मे फिसलता था,
वक्षस्थलो पर तिर रहा था,
जो तुम देखना चाहती थी, नयनो से,
कि वह बच्चो को कितना दुलारता है, प्यार करता है।

वह धूप मे थकाई युवती अपलक निहार रही थी।

आतकारी होने के कारण तभी उसे गोली लगी,
तुम्हारी कुक्षि म पुरातनवादियो ने छुरी घोप दी।
समय कम था—वह तुमसे चिपट गया, तुम उससे।

पीडाओ म परस्पर उलट-पुलट घूमत रहे,
प्राण पखेरू आकाश मे उड गए, दोना के।

उस लाल राजकुमार शिशु का क्या हुआ ?
आलिगनो मे हर बार सटा होने से,
असीम कसावों के बीच वह भी घुट कर मर गया!

धूप मे थकाई युवती ने तीनो पर श्वेत चादर डाल दी।

बँगला गांधी के वास-सुवास जंगल में पगडंडी पर था।
आते जाते लोगों ने चादर पर सौगंधी के बहुत फूल चढ़ाए।

थोड़ी देर के लिए ही, पर बच्चा खेला बहुत था।

6

है-है ! यह कोई सूचना है ! यह भी कोई सूचना है !
मत सुनाओ, कान फट जाएँगे, ऐ हवाओ !

कम्पिला मर गई है, संसार वालो, ज़ोर से हँसो,
उत्सव मनाओ, घी के दीए जलाओ,
तुम्हारे मन-की-सी हो गई है।
निखट्टुओ, तुम न मरे, और कम्पिला मर गई !

नर भक्षक पाशविकता के बेटो पोतो !
सूअरों के साँस लेते थूथड़ियो से,
परस्पर सींग मारते मरकने साँडो !
कम्पिला मौन हो गई है, नाचो, कूदो।

अभी उसकी आयु क्या थी ? अभी वह क्यों मरती ?

अभी उसने दुनिया में देखा क्या था ?
मुक्त चुम्बन का रस भी नहीं,
जो कह सकती कि मधुर मधुर है।

लकड़ियां की थोड़ी फाड़ इकट्ठी की,
चुग चुग समिधा पर उसे लिटाया,
समुद्र की ओर पैर कर, सिर हिमालय की ओर,
कड़ों के ऊँचे ढेर से चिता चिन दी,
अर्थी के बाँस बान ढीले कर दिए,
अगुरु घी फेंका फूंका, सामग्री छोड़ी।

आगे बढ़ 'राम नाम सत' कह दी,
भीड़ ने 'हर के हाथ मुक्त' कह दी।

चिक्कर काट जलने कूँचले से, एक ने
हवा का रुख देख चिता मे आग दे दी।

राम को वन वन भटकाने वालो की सतानो!
सीता के नाम पर प्रवाद फैलाने वाले प्रपचको!
तुम्हे राम का नाम लेने का अधिकार क्या है?
सावधान, जो कम्पिला का नाम किसी न लिया!

हाथ भर म आने वाला उसका छोटा-सा चेहरा!
छोटे से चरण उसके गोरे गोरे रचे भरे!
प्रमुदित, चाल उठा पग रखने वाली हसिनी!
लाल गोल हथेलियो पर तिकने तिकलियाँ!
लजाती सामने गीत चुन कर गाती थी।
सब उस आग मे, आग तू क्यो बनी, उसके लिए?

आकाश ने निर्वात पैदा कर उसका दम घोट डाला।
जल ने खौल प्राण निकलने तक उसे निचोड डाला!
लपटो ने उठ देह को भड भड भस्मीभूत कर डाला!

हाँ, उसे दो राक्षसनी चबड गइ!
एक गोरी, एक काली, कभी दिन, कभी रात बन कर!
नककटी, डायन, भेडन, चुडैल, नटनी, बिलौटियाँ!

अब नाखून कट झूठमूठ के प्रमी जन्म लेंगे
कम्पिला क लम्बे लम्बे नुकीले नाखून थे।
बँदरी के से रोम दह पर लोहरे लोहरे,
पकड पूरी पडती थी गिलगिली स्वर्णिमा पर।

कहा चली गई अन त काल तक सोने को?
किस महाशून्य म कम्पिला मौन हो गई?

स्वर तू क्यू गूजा ऐसी बात सुनाने को!
शब्द, तू क्यू लिखा गया इस निरथकता म!



विचार

1

सोचने से लाभ हो तो सोचो,
कोई लाभ न हो तो क्या सोचती हो ?

जो हो, फिर निश्चेत गिर पड़ी हठात चक्कर खा !
उठो तो, थोड़ी सुधि लाओ, ऐसे तो मर जाओगी ।

प्रेम को किश्तों में बाँट कर लम्बा कर लो,
घनीभूत क्षणों को फैला लो,
प्यार से अधिक उसे तुम अच्छी लगती हो ।

केवल यहीं तक सीमित रहो, इसी पूछो तक,
कि दाँतों की अदला-बदली कर,
तुम कितनी घाटे में रह जाओगी,
और वह कितना धनवान हो जाएगा,
जब ऊपर का दाँया छैला दाँत तुमसे छिन जाएगा ?

2

दोनों युवा हो, चपल हो, नटखट हो,
भेद बना रहे दूरियों का यही तो,
जाने उसके मन में क्या आ जाए ?
जाने तुम्हारा मन क्या कर बैठे ?

इतनी सट कर मत खड़ी हुआ करो उससे,
आलिंगन भर लेगा तो नैतिकता धराशायी हो जाएगी ।
इतने निकट मत लाया करो गर्म श्वासों को,
धूम उठेगा तो समाज का सारा ढकोसला मिट जाएगा ।

प्रेम की समाधि में सचेत रहो, किसी तरह
निर्विकल्प होते चारों ओर शोर मच जाएगा ।

और सुना तुमने—तुम्हारी कब तक हँसी उड़ेगी ?
दाना चुगते चिड़े और चिड़िया अभी से कह रहे हैं,
कि तुम दोनों निर्वीर्य हो जो कुछ नही कर पाए,
इस अवस्था मे रुके कुछ नही जानत प्रेम का।

3

देख रहा था—कुछ सोचती घुटी,
    अपराध भाव से सताई सी थी,
वह कैसे मिटा देता शल्य चिकित्सक बन कर रोग को ?

तुम्हारी समझ म आ जाएगा अपने आप,
पूछने पर चुप हो जाता था, इसीलिए, वाक्रुद्ध।

अब प्रतीक्षा का फल कितना मीठा निकला,
कि स्वय कह उठी हो—"जिसने हमे प्रेमी बनाया,
उस अद्वैत विरचि को हमे दण्ड दने का अधिकार क्या है ?"

कम्पिले, इसे तनिक उच्च स्वर से कहो,
कि चाह तो तुम एक दूसरे को दण्ड दे सकते हो,
प्रवादियो की टोकाटाकी की मा्यता क्या है,
जो काम के कुत्ते बने हजार गुना भि्न और अपराधी हैं ?

वह भी तुम्हारे स्वर मे स्वर मिला कर कह रहा है
कि प्रवाद अपराध के सिवा कुछ भी नही, जब इसमे
    शोषण है भुखमरी है, रोग है, प्यास है,
    चोर हैं डकैत हैं तस्कर हैं, लुटेरे हैं
    युद्ध है, हत्या है, चीख है, पुकार है।
इन पापियो मे से प्रेमियो को कौन दण्ड देगा ?

प्रवाद के मूल मे ओछे प्रेमी हैं
पीछे रह गए साथी हैं बुरे भी क्या !

पूरा रहस्य नही बता पाएगा निचोड कर रस ही दे रहा है, तुम्हें।
इसे आँख मीच मान पी जाओ,

कि स्वय को हीन नही मानना है—
धरती पर सघष फौलाद बनने का है।

केवल तुम साहस रखो, और बिना घबराहट चलो आओ।
सिहराती हुई उसका हाथ चित पकडो,
उस पर अपनी गोल हथेली पट रखो,
फिर हाथो को प्यासे अधरो से बिना उठाए चूमो,
हृदय को भीतर तक सानता गीला सन्तोष मिलने तक,
इसी सुख के लिए गगन से उतरी हो, कम्पिले, यह जानो।

4



कम्पिले, इस बात का पता तुम्हें भी है, उसे भी
भूल मे न तुम हो, न भूल मे वह है,
व्यथ खीच खिचावो से क्या लाभ ?
आँसुओ को सदाचार बना दो,
पीडा को प्रसन्नता म बदल दो—हार को जीत म।

किसी की बात न सुन अपनी बात कहो,
आप ही आप बहुत, आप ही आप रहो।
इस वेदना को खोल कर किससे कहो ?
कौन मानेगा, सुनेगा कौन, किससे कहो ?
जन्म ढोए थे किसी और के शाप उतार,
मिलेंगे मरण भी किसी और के, किससे कहो ?
नर्क रच जाने के बाद थी आँख खुली,
मिलेगी नक मे ही, यह किससे कहो ?

आत्म-दशन के बाद भी हृदय पर जोर !
मद्धम-मद्धम जगती वेदना क्या है ?

विख्यात हुआ जग मे भूभागो का स्वामी,
वह है, जो कुछ भी है, भटका बनजारा है।
कि कुछ भी नही उसका, कि नाम का राजा है,
तुम चोट न दे देना, वह दैव का मारा है।

जन्म धारने की यही चाह रही होती,
सन्तोष मिला होता कि जान न हारा है।
यह डाल आपदा में, बेबस, आत जान,
यया यह कि किस किसन हर बाल न्यारा है।
मझधार विचल चल कर, लो ढूढ़ जहाँ तक है,
पहचान वही मन का मन्दार किनारा है।
चाहोगी, ललकोगी, जब बाँह पकड़न को,
वह पास खड़ा हो कर हर बार तुम्हारा है।

5

तुम पुष्प हो, तुम्हारे कारण,
धरती योग्य नही भर रही है,
इसकी शोभा बढ रही है, वत्सल !

कोई राक्षस, या कानून, या बबर-बडबोला,
पतिता बता तुम्हे आत्मदान कर दे तो,
सागर की लहरो से बचाता तुम्हे वह दौडेगा,
पहाड से कदत तुम्हे बाँहो मे वह थामेगा,
आग मे धधकन मे पूव अक म वह खोचेगा।

वह कठ से फदे को खोल पुष्पहार पहनाएगा,
हाथ का हलाहल फेंक अमत के घूट पिलाएगा।

सम्पत्ति पर नही, रूप पर नही विद्वत्ता पर नही
तुम्हे निज मन पर गव था—जिसे उसने गौरव दिया है।
वह दाता है, उसने कुछ छीना नही है
प्रशसा से भी बढ उसने तुम्हारी स्तुति की है।

वह प्रमाण है—सच्चरित्र—पवित्र—मुसकान भरी तुम,
प्रेम का आकषण, रूप की लज्जा यौवन का भार।

सष्टि की शोभा हो तुम, ऐसे ही चला करो गर्वीली बन कर,
सूरज की चौंध हो तुम, उत्तर दे दिया करो प्रवाद का सपाट।



भावना

1

कुछ और सस्मत हो आता है मन्दिर मे !
सुनो तो कहे—मन का आक्रोश बताना आरम्भ कर द ?

ससार की ओर सकेत करके उससे पूछता है,
कि यह तूने रचा है और तुझे देवता भी कहे ?
यह तेरी माया है, और तरी मनौती भी करें ?
सर्वत्र तेरी चाह है और तेरी आरती भी उतारें ?

हत्यारो को हथियार पकडा हत्या !
वधिको को राज सौंप विप्लव !
सन्तो के शीश कटवा प्रलय !
प्रेमियो क प्रवाद फैला अट्टहास !

युद्ध मे हाथ पाँव कटे रुड मुड नाचत हैं !
कटार क धापने रुधिर की धारा फूटती है !
माँ बाप बच्चो को डराते भूतप्रेत बनते हैं !

मरतो को रोटी का टुकडा सुलभ नही !
प्यासो के मुह स पानी छीन लिया जाता है !
और तू शाश्वत है सगुण है, निगुण है, ऐसी-तैसी !

बता कि कुबडे की कमर किसने तोडी है ?
लँगडे की टाँग किस देवता की लाठी है !
टूटे का हाथ किस दानी के काम आया है ?
अधे की आँख किस स्वग को दखती हैं ?
बहरे के कान कौन देववाणी सुनत हैं ?
गूगे की गिरा किस सगीत का सुर है ?
बूचा तेरे किस सग्रहालय की शोभा है ?
और तुझे आत्तनाद पुकारा जाए !
दयार्द्र मान तेरी अचना की जाए !

तुझे फूलो का रचयिता कहेगा,
प्रसन्न हो ले, निगुण, निष्ठुर !
तुझे पवतो का राजा मानेगा,
वृन्दावन म बाँसुरी वजाता रह !
तुझे सागरा का स्वामी बताएगा,
क्षीर सागर मे स्त्रैण बना रह !
फूल तोडने वाले, जलदस्यु पवतचोर !

2

कुछ पूछ भी बठी उसकी बात, दु खो की ?
जिनके पास प्यार मे क्षण नहीं बिताने को,
आठो याम घणा मे बिता रखे हैं, भू पर !

दिए हुए दु खो को भगवान के कैसे कह दे ?
भरने की भूख को नाटक कैसे मान ले ?
प्रकट की रहस्यमयी व्याख्या कैसे कर दे ?

कैसे माने कि किन्ही तोतो ने अमरूद कुतर कर फेंक दिए हैं ?
मनुजातो के मास के लोथडे से हैं, गँडासो से काटे गए !
बूचडखाने के वधिक याद आते हैं !

3

फिर भी वह मन्दिर गया सब चौंक पडे—वह मन्दिर गया !
अचरज की बात—एक नास्तिक मन्दिर गया !

और तुम पूछती हो—उसने वहाँ क्या माँगा ?
वह क्या माँगता ? उसने वहाँ कुछ नहीं माँगा !

द्वार से दीपो की ज्योति देखी,
घटो के बजने के स्वर सुने
भक्तो की अपार भीड जुडी थी
धूपवत्ती के धुएँ बढ रहे थे,
पुजारीगण पुष्प चढ़ा रहे थे !

कोने से खड़े हो देखा कि तुम्हारे ही हाथो मे चन्दन है,
तुम्हारे ही हाथो म जल है—तुम्हारे ही मुख से मत्रोच्चारण है
तुम्ही न अपराग जगाया है—तुम्हारी ही नेह की तन्मयता है !

भक्तिनो म देखा—तुम्ही आ रही हो, तुम्ही जा रही हो,
इस द्वार से उस द्वार से, पुन पुन, वेश बदल-बदल !

सोचा—मुख्य प्रकोष्ठ मे सबसे आगे देर तक,
घुटने टेक एकाग्र प्राथना करती होगी,
कि तुम्हारा विक्रम आगे बढ़े, आगे बढ़े, आगे बढ़े !

फिर सोचा—धीरे से उतरती पोर-पोर घाट पर, (
सरोवर की निचली पैडियो पर चरण धोने जाती
कोने म यथादश पादुकाए उतारती होगी !

वह चारो परकोटे घूमा, सारे विग्रह देखे, पूरी परिक्रमा की,
पर कही हाथ नही जोड़े, उसने, किसी को नमन नही किया !
उसे पता नही कि मन्दिर शैव था, शाक्त था, वैष्णव था !
सन्ध्या की वला घुमडते, प्रसन्नचित्त, घर लौट आया !

लोग कहते हैं कि चलो, कैसे भी, बहाने से,
एक नास्तिक का मन्दिर मे पदार्पण हुआ, कहने को !

4

तुम उदास बैठी हो ? इतनी दुखी क्यो हो गई ?
समझाने से भी मानती नही, क्यों ?
भगवान को भी अपशब्द ! बुरा भला !
क्या हो गया, पत्थर की बनी, सुनती नहीं, एक भी ?

वह तुम्हारे पास है—अपने विक्रम को नयनो से निहारो,
देह प्राप्त करने की अनात चाह छोडो,
और भगवान का यशोगान करो महती उपकार के लिए !

जो जितना देता है, उतने क लिए उसे साधुवाद दो,
बड़े लोभ मे किसी के छोटे उपकार को भूलना नही है !

चलो, उसका घंटा मिल कर दोनों जोर से बजाओ,
जिससे ध्वनि ब्रह्माण्ड भर में गूंज जाए—गूँजती रहे !

शंख फूंकते फिर दिगन्त में फैल जाए आर से छोर,
काल में ध्वनित होता रहे आदि से अन्त तक, शंखनाद !

सन्ध्या घुमड़ गई है, देर होती देख, नहीं तो,
समय से पुजारी मन्दिर के द्वार बन्द कर देगा,
और तुम चूक जाओगे मन के पुनीत कर्त्तव्य से !

उसे भी पूजा की थाली पकड़नी सिखाना,
अकारण शुचिता से वंचित रहे जा रहा है !

मार्ग में पाँव उठा चलती अब,
कोई बात कहो, आरम्भ करो, मद्धम-मद्धम वीणा की तरह,
सारस की तरह मत मौन रहो, कुहू-कुहू करो कोयल की तरह,
गम्भीर बनो मत, आह्लादित, चहको चहको बुलबुल की तरह !

5

कुछ नास्तिक तुम बन गई हो—एक सीमा तक,
कुछ आस्तिक वह हो गया है—दूसरी सीमा तक !
दो चरण तुम, दो चरण वह, बढ़ते हुए दोनों,
अब चाहो तो दार्शनिक मित्रता का हाथ मिला लो !
दसवीं भक्ति यह है कि भगवान को जी भर गाली दो !

तुम पथ से विचलित होती हो, वह संभाल लेता है,
उसके गिरने की बारी आती है, तुम हाथ दे देती हो,
समझ कितनी अच्छी रही, संभलने की, संभालने की !

मन उसका भी डिगा है, तन तुम्हारा भी हिला है
पर कितने निष्कलंक बच गए दोनों !
स्वयं कष्ट उठाए धरती पर बड़े से बड़े,
मनों के सागरों को रोका, तनों के पर्वतों को थामा !

वह स्वय ईसा है, उसने कोई ईसा पैदा नहीं किया,
वह स्वय कबीर है, उसने कोई कबीर बना कर नही छोडा,
वह स्वय कण है, उसने किसी सूय का रूप धारण नही किया,
और तुम स्वय शकुन्तला हो, तुमने किसी शकुन्तला को जन्म
नही दिया !

कहो कम्पिले, वह विश्वामित्र से श्रेष्ठ है, महान है,
मानो कम्पिले, तुम मेनका से उच्च हो, शालीन हो !

पुन बोलो कम्पिले, वह पुरूरवा से अधिक शक्तिशाली है,
पुन मानो कम्पिले, तुम उवशी से अधिक गर्वीली हो।



चलो, उसका घटा मिल कर दोनों ओर से बजाओ,
जिससे ध्वनि ब्रह्माण्ड भर में गूँज जाए—गूँजती रहे !

शीश फूटते दिग दिगन्तो मे फँस जाए आर से छोर,
काल में ध्वनित होता रहे आदि से अन्त तक, शंखनाद !

सन्ध्या घुमड़ गई है, देर होती देख, नहीं तो,
समय से पुजारी मन्दिर के द्वार बन्द कर देगा,
और तुम चूक जाओगे मन के पुनीत कर्त्तव्य से !

उसे भी पूजा की थाली पकड़नी सिखाना,
अकारण शुचिता से वंचित रहे जा रहा है !

माग मे पाँव उठा चलती अब,
कोई बात कहो, आरम्भ करो, मद्धम-मद्धम वीणा की तरह,
सारस की तरह मत मौन रहो, कुहू-कुहू करो कोयल की तरह,
गम्भीर बनो मत, आह्लादित, चहको चहको बुलबुल की तरह !

5

कुछ नास्तिक तुम बन गई हो—एक सीमा तक,
कुछ आस्तिक वह हो गया है—दूसरी सीमा तक !
दो चरण तुम, दो चरण वह, बढ़ते हुए दोनों,
अब चाहो तो दार्शनिक मित्रता का हाथ मिला लो !
दसवीं भक्ति यह है कि भगवान को जी भर गाली दो !

तुम पथ से विचलित होती हो, वह सभाल लेता है,
उसके गिरने की बारी आती है, तुम हाथ दे देती हो,
समझ कितनी अच्छी रही, सभलने की, सभालने की !

मन उसका भी डिगा है, तन तुम्हारा भी हिला है,
पर, कितने निष्कलंक बच गए दोनों !
स्वयं कष्ट उठाए धरती पर बड़े से बड़े,
मनों के सागरों को रोका, तनों के पर्वतों को थामा !

वह स्वय ईसा है, उसने कोई ईसा पैदा नहीं किया,
वह स्वय कबीर है, उसने कोई कबीर बना कर नहीं छोड़ा,
वह स्वय कण है, उसन किसी सूय का रूप धारण नही किया,
और तुम स्वय शकुन्तला हो, तुमन किसी शकुन्तला को जन्म
नही दिया !

कहो कम्पिले, वह विश्वामित्र से श्रेष्ठ है, महान है,
मानो कम्पिले, तुम मेनका से उच्च हो, शालीन हो !

पुन बोलो कम्पिले, वह पुरूरवा से अधिक शक्तिशाली है,
पुन मानो कम्पिले, तुम उर्वशी से अधिक गर्वीली हो।



चौथा खण्ड

कल्पना

दर्शन

याद करे कैसे, किस मन से, भूल कहाँ से जाए ?
निराकार हो नही, नही साकार रह गई हो तुम !
'बेरिनि भइ कुजो' की भी तो याद नही आती है,
'चल खुसरो घर आपने' की केवल रट रहती है !

पृष्ठ 73



कल्पना

1

भेद पा लिया तुम प्रसन्न हो सच मे,
कह देते हो मेरा हरियल हँसता,
कहती अब मेरा गुस्से मे है !
करे यह केवल रहा तुम्हारा,
ली मनस साधनाओ की !

... तुम्हें मिलता है,
... म बैठी,
..., क्षण-क्षण क्रोध नाप कर !
उठ कर उसे मना लोगी तुम,
... दोगी, दो पुष्प फेंक कर,
के रस मे रची-पगी-सी !

यह, उसका दुख कितना है !
उत्तर द पाओगी ?
... नही पाता है,
... प्राप्त नही कर सकता,
..., भूल कहाँ स जाए ?
... रह गई हो तुम !
तो याद नही आती है,
केवल रट रहती है !

..., कितनी उलझ गई है !
हो, सच म सरल रही हो ?
... पुकार को जानो !

... रोक दिया है !
प्रवाद के भय से,

जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर यह हंगाम ऐ खुदा क्या है?
सब्ज ओ गुल कहाँ से आए हैं?
अब्र क्या चीज है, हवा क्या है?

—गालिब

विश्वात्मन्, जबकि चतुर्दिक तेरे सिवाय दूसरी सत्ता हो नहीं है, तो फिर यह सब आपा-धापा-कोलाहल है क्या? ये विकसित कुसुम कहाँ से आए हैं? बादल क्या चीज है? हवा क्या है?

कल्पना

1

तुमने उसका भेद पा लिया तुम प्रसन्न हो सच मे,
जब हँसता है, कह देती हो मेरा हरियल हँसता,
और क्रोध करते कहती अब मेरा गुस्से मे है !
हस कि या वह क्रोध करे वह केवल रहा तुम्हारा,
तुमने कैसी सिद्धि साध ली मनस साधनाओ की !

उसके क्रोधित होने से आनन्द तुम्हे मिलता है,
मुसकाती रहती रह कर निश्चिन्त हृदय मे बैठी,
डरती नही, छेडती रहती, क्षण-क्षण क्रोध नाप कर !
तुमको है विश्वास कि उठ कर उसे मना लोगी तुम,
जब चाहोगी, तभी हँसा दोगी, दो पुष्प फेंक कर,
नन्दन वन के मधुर रास के रस मे रची पगी-सी !

तुम हो दुख से मुक्त, किन्तु यह, उसका दुख कितना है !
पूछ रहा है प्रश्न, ठीक क्या उत्तर दे पाओगी ?
पकड नही पाता है तुमको छोड नही पाता है,
त्याग नही सकता वह तुमको प्राप्त नही कर सकता,
याद करे कैसे, किस मन से, भूल कहाँ से जाए ?
निराकार हो नही, नही साकार रह गई हो तुम !
'बैरिनि भइ कुजो' की भी तो याद नही आती है,
'चल पुसरी भर आपने' की केवल रट रहती है !

कितनी सरल बात थी, लेकिन, कितनी उलझ गई है !
तुम्ही कहो, क्या कह सकती हो, सच मे सरल रही हो ?
उसकी भी तो सुनो, कभी उसकी पुकार को जानो !

2

तुमने यह क्या किया कि उसका सपना रोक दिया है !
और न वह भी केवल जिस तिस के प्रवाद के भय से,

जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर यह हंगामा ऐ खुदा क्या है?
सब्ज़ ओ गुल कहाँ से आए हैं?
अब्र क्या चीज है, हवा क्या है?

—ग़ालिब

विश्वात्मन, जबकि चतुर्दिक तेरे सिवाय दूसरी सत्ता ही नहीं है, तो फिर यह सब आभा-माया-कोलाहल है क्या? ये किसलय-कुसुम कहाँ से आए हैं? बादल क्या चीज है? हवा क्या है?

कल्पना

1

तुमने उसका भेद पा लिया तुम प्रसन्न हो सच मे,
जब हँसता है, वह देती हो मेरा हरियल हँसता,
और क्रोध करते कहती अब मेरा गुस्से में है !
हस कि या यह क्रोध करे वह केवल रहा तुम्हारा,
तुमने कैसी सिद्धि साध ली मनस साधनाओं की !

उसके क्रोधित होने से आनन्द तुम्हें मिलता है,
मुसकाती रहती रह कर निश्चिन्त हृदय म बैठी,
डरती नहीं, छेड़ती रहती, क्षण-क्षण क्रोध नाप कर !
तुमको है विश्वास कि उठ कर उसे मना लोगी तुम,
जब चाहोगी, तभी हँसा दोगी, दो पुष्प फेंक कर,
नन्दन वन क मधुर रास के रस से रची-पगी-सी !

तुम हो दुख से मुक्त, किन्तु वह, उसका दुख कितना है !
पूछ रहा है प्रश्न, ठीक क्या उत्तर द पाओगी ?
पकड़ नहीं पाता है तुमको छोड नही पाता है,
त्याग नहीं सकता वह तुमको प्राप्त नही कर सकता,
याद करे कस, किस मन से, भूल कहाँ स जाए ?
निराकार हो नही, नही साकार रह गई हो तुम !
'बैरिनि भइ मुजो' की भी तो याद नहीं आती है,
'चल खुसरो घर आपन' की केवल रट रहती है !

कितनी सरल बात थी, लेकिन, कितनी उलझ गई है !
तुम्हीं कहो, क्या कह सकती हो, सच मे सरस रही हो ?
उसकी भी तो सुनो, कभी उसकी पुकार को जानो !

2

तुमने यह क्या किया कि उसका सपना रोक दिया है !
और न वह भी केवल जिस तिस के प्रवाद के भय से,

जिसका कोई तारतम्य जुड़ पाता नहीं हृदय से !

इस प्रवाद के उठने का भय भेद कहाँ तक खोलें ?
इसका अता-पता है, मनुपुत्रों की निरी जलन है,
पर सुख देख जनित जल भुनने की यह घृणित घृणा है !
चाहे जो हो मूल सृष्टि का, किन्तु प्रवाद न होगा,
प्रेमी पुरुषों को प्रवाद उठ मिलने कब देता है !

इससे भिन्न दैव का वह भी पूजन कर सकता है,
बहुत चाहता है निज अन्तर मे वह उस ईश्वर को,
किन्तु, देह मे बसी कौन यह बबरता भूके है ?
उससे पूछे बिना बताओ किसको मान लिया है,
उस प्रवाद को, कापुरुषों का जो प्रचार होता है ?

जब प्रवाद की बात चले तुम इतनी सीधी बोलो,
जितने सीधे खिंचे धनुष से बाण चला करते हैं !
और, चले जब कभी प्रेम की बात, सृष्टि तक पहुँचो,
कभी समझ म आओ मत ऐसा रहस्य बन जाओ !

हाय अरी सामाजिकता गिनगिन ढकासले तेरे !
हाय मरी नैतिकता, जीवन मे प्रपच तेरे ये !
इन छुरियों की नोक प्यार के पक्षी ही जान हैं,
फिरती हुई गदनों पर, या चुभती हुई हृदय मे !

3

कितना लम्बा नमन, हाय वह गहरी विदा, निदारुण,
हँस न सके, रो सके न मन पर कैसी चोट पडी थी !
हुआ घटित वह उस दिन क्या जब द्वार पार करते ही
उतर पडियों स नीचे कुछ दर खडी हो, चुप रह
एक दिशा तुम चली और चल दिया दूसरी वह था,
मन म भारी बोझ अश्रुप्लावित दृग छिपा छिपा कर !
हाय विवशता प्राणो की, देहों की, और मनो की,
अधरों पर मुसकान हृदय दोनो के रोते जाते !

4

हाय प्रेम, आशका मन मे क्या-क्या ले आती है।
सोचा करता, किस कारा मे पड़ी विकल रोती है।
हाय, कौन शृंखला झनाझन जिससे बाँह बँधी है!
मिलने की तो बात दूर, देते न देखने तक भी,
पग-पग पर आवरण लगा नयनो से ओझल कर दी।

उसे ज्ञात यह नही सगिनी जीवित भी है, जग मे,
काँपा करता, नर-भक्षी वधिकों ने मार न दी हो!
वक्षस्थल पर दानव कैसी चोट दिया करते हो।
मरणासन्न लिटाई, हो सूखे बबूल के काँटे।
फिर उसके साँसो मे क्या है, वह किस पर बैठेगा?
सुख की खोज दुखो से चलने की हो गई कहानी।

5

खड़े वीथियो पर चर्चा करते हैं, लोग पूछते,
—"कौन पुरुष यह नित्य एक ही वस्त्र धार फिरता है?"
पर, वह किसके लिए वस्त्र बदले, किस लिए नहाए?
किसे दिखाने को धोए निज केश, कौन खुश होगी?
इत्र लगाए किसे रिझाने को रस-बास सुगंधित?
निकट बैठ कर किसका मन वैसा प्रसन्न होगा अब?
उसकी मुसकानो से किसका हरा हरा जी होगा?
सच ही वह नटखट, हँसोड, बस, तुम्हे देख होता था।

आती दूर किसी को लखता सोच, कि शायद तुम हो।
पर जब होता ज्ञात कि वे तो दुष्ट क्रूर मेडन हैं,
दुश्मन हैं, उर की काली हैं, और न उनमे तुम हो,
जो कुछ भी, बस रहा-सहा, फिर तन मन फुंक जाता है।
पीछा करता मगतृष्णा मे प्यासा बहुत दूर तक,
भूल हुआ करती है लम्बे काले केश देख कर।

6

दोष तुम्हारा नही, भला, उसका अपराध कौन-सा ?
फिर भी क्या हो गया, विवश यह, प्यार तडपता क्यो है ?

उसने सोचा यही कि उसके दुर्दिन आ न सकेंगे,
मान रखा था—बच जाएगा, ज्ञान ध्यान पाया है ।
किन्तु, प्रेम म पडे हुओ को कौन बचा सकता है ?
पढो कहानी उठा कही से सदा यही मिलती है,
—लने होते साँस आँसुओ को टपकाते पलपल ।

एक ओर कर गया उसे जर्जरित सत्य घुन लग कर,
और दूसरे उठ प्रवाद ने नोच नोच खाया है !
सच प्रवाद के कारण उसने कितने दु ख सहे हैं !
और निभा कर अधिक कौन सा सुख अब पा जाएगा ?
कर दगा उदघोष कि वह हारा है, वह हारा है,
ढोल बजा कर गाँव गाँव म घूमेगा घर घर मे !

यह क्या किया बताओ, उसका उर ही तोड दिया है !
यह क्या तुमको सूझी इतनी जल्दी सच कहने की ?
एक दूर तक हाथ पकड ले जाती उसी भूल म,
कूडा ककट रुका, स्वच्छ हो जाता, उसके मन का !

तुमने सोचा यही बाद मे उस पर क्या बीतेगी,
जब जानेगा सत्य, खाज कर स्वय छिपी ये बातें ?
पर, अब भी क्या हुआ जान कर, रीढ टूटती जाती,
पछताव की रह रह आग धधकती, प्राण फुके हैं !

सत्य जिएँ, दो स्वप्न दख लें, चार कल्पनाए भी,
पल से उठ कर नभ मे, जल मे थाडा विचरण कर लें ।
इसके बाद मत्यु को जग म किसने बुरी कहा है ?
बुरी यही जो असमय म अनहोनी घट जाती है !

उसने कितना मना किया, मत सत्य उस दिखलाओ,
दख चुका था जान कितनी बार दुष्ट को दश स !

सत्य न था कुछ और, सामन केवल धूल अटी थी।
किन्तु न तुम मानी, उसको तुम दु ख न दे सकती थी,
यही सोच कर खोल दिया आवरण कलमुहे सच का,
और कल्पना को तब ही क्षण भर म भूज दिया था।
तुम मे थी दुबलता यह जो दह तुम्हारी दुखती,
जब होता यह ज्ञात तुम्ह वह दुख मे पडा हुआ है।
अश्रुपूण मुख देख मानवी विकल तडप उठती थी।
पर, रोने के सिवा बताओ, अब क्या दिया हुआ है?
कहने को है देह हृदय से, मन से मरा पडा है।

सारा सच कह दिया भला, क्यो? धीरे धीरे कहती।
अ तमन से जुडा गहन पहले अनुराग मिटाती।
वह भी सँभल सका होता कुछ भाप विपद की तब तक।
बिना सोचते आगे पीछे का यह क्या कर डाला।

बैठी रहती, या प्रशा त फिर, क्या कुछ बिगड रहा था?
खिले हुए पुष्पो से रच कर सजी हुई शोभा से,
बिना छुआए पोर, तप्ति नयनो को मिल जाती थी।
अ त समय आने तक की चुप्पी धारण कर लेता।

7

सच, ओ सच, तू अब भी उसके मन मे रुका पडा है।
निकल नही क्यो जाता उसको छोड अकेला वैरी।
तेरे बिना देख वह जाने क्या क्या कर सकता था।

मुक्त हास हँसने का बडभागी दिन कब आ पाया?
कहा आपस मे जो फिर फिर बाजी लगा-लगा कर,
एक ढेर पर एक साथ य अपनी ठोग लगेंगी।
कभी हार जाती तुम, या फिर, कभी हार जाता वह,
कैसा सान्द्र द्रव्य हो मधुरस टपक-टपक बह पडता,
पास-पास जो गहूँ के दानो को टुग टुग चुगते।
उत्कठित, उ मद हो, तुमको सग लिए उपवन मे,
चुहुल चुहुक करता होता हर डाल-डाल पर उडता,

लाल अँगुलियाँ, रंगी चित्र सी चोंच, लाल सी होती।
गुडुक-गुडुक करते होते जो कहीं गिजा को पा कर,
और कभी जो आसमान म पंख खोल उड जाते।
मंदिर पवन म रस-पराग को उडता दिखा दिखा कर,
पूछा करता वह तुमसे—तितली बन कब चूसोगी ?
जल क्रीडा म डूब नहा पखो को भिगो भिगो कर,
पुन धूप म सुखा बैठ चोचो से काढा करते।
कहीं, कभी जो थक जाते तो लोट रेत की शय्या,
सारी मिटा थकावट फिर फिर दम भर भर कर उडते।
छिटक चादनी बीच सुधा धन बरस शात बगिया मे,
कहता—नयन मीच फूलो को भावुक नमन करेंगे।

पक्षी उडता फिरा अकेला जाने कहाँ-कहाँ पर !
एक बार तो दूरी भर कर सग-सग उड लेती।
एक कोण पर झुकी हुई नभ मे जब पाँखें होती,
धरती वालो को जाने तुम कितने सुदर लगते !

इन्ही कल्पनाओ के हित, साकार इन्हें करने को,
कौन दूसरी कम्पिल को अब थक थक कर खोजेगा ?



दर्शन

अब भला तुमको बताए क्या तुम्हारे ही विषय मे
बीतती है जो हृदय पर याद आ-आ कर तुम्हारी ।

नित्य उसका नाम ले कोई जगा जाता सबेरे,
और तुमको सामने ला कर खडी करता विभूषित,
और फिर कहता चुनौती दे दुसह, दुर्दान्त, दुर्वह
— 'यह तुम्हारी प्रेमिका है, चित्र रच लो, मोहिनी का,
बिन छुए इसको समझ लो, देख लो, पूरी परख लो ।"

यह कही कुछ पूछता यदि प्रश्न तो कहता उलट कर,
—"भोगने को विश्व मे किसको मिली कब प्रेमिका है ?
यह सुरभि लो सूँघ, इससे जी भरो छक लो जहाँ तक,
और जितनी की चाह मन मे मचा लो गुदगुदी भी,
पर, रिझाने को, दिखाने को मिली है, छुइमुई है ।

—"कल्पना म तुम जहाँ तक चाहते हो, पहुँच जाओ,
स्वप्न की जितनी हृदय मे ललक है, आगे बढा लो,
यह न रोकेगी तुम्हे पूरी पढा कर भेज दी है ।

—"बाग मे इसके सभी कुछ किन्तु, तुम कुछ तोडना मत,
वल्लरी यौवन फलो के भार से नत है, लदी है,
हर कही देखो, वही पर अग गदराया हुआ है ।
य खडे हो कर तुम्ह उद्यान सारा घूमना है,
नाप लो पग को कि कितना चल सकोगे इस विपिन मे ।"

जब कभी चाहा तुम्हारे रूप को छूना अधर से,
रोक देता है सचेतक मन्त्रदाता मन्त्र से ही,
—"हाय मत छूओ इसे यह धूल है, फिर रज रहेगी,
फिर न पाओगे इसे ब्रह्माण्ड मे भी खोजने से ।
क्या न इसको साँस लेती देखना तुम चाहते हो ?"

शान्त कर, दे सान्त्वना, समझा बुझा फिर बोलता है,
—"हाँ, तुम्हारे प्रेम को यह शाप ऐसा लग गया है,
जुड न पाएगी मधुर चोचे कभी दो पक्षियो की,
रात भर जग चादनी मे गन्ध ही बस पा सकोगे ।

एक मन है, सत्य है पर नेह की दो दूरियाँ हैं।"

बोलता जाता न द कर ग भी उत्तर प्रश्न था,
—"हाँ, तुम्हारे साथ यह अन्याय औरा सा तनिक भी,
कम नहीं है, कुछ अधिक भी है नहीं खुद को टटोलो।
यह तुम्हारे पास बैठी है, तुम्हें कुछ कम नहीं है,
जान लो सौभाग्य है, चुन कर अरे, तुमको मिली है,
यह तुम्हारे रूप मे, रग मे मिला कर दी गई है।

"थक गए हो ?"—पूछ कर उससे जगाता फिर दाह को,
—'फिर करो आरभ तुम कैसे चले थे, फिर यही से,
फिर करो वह याद उस पहल दिवस, उस पहर की ही।
तुम चलोगे तो इसी के साथ इस जलती नदी मे।
रुदन करना हो, अभी कर लो, न फिर अवसर मिलेगा।
काटना कलि काल आगे का, तुम्हें इस भावना से।"

फिर उठाता है उसे वह, फिर थकाता है उसे वह
—'यह तुम्हे जो दीखती है भूमिजा-सी नत खडी चुप,
जानते हो इस अभागिन के हृदय की बात भी कुछ ?
मानते हो क्या यही सच मे कि भीतर शा त होगी ?
आप अपनी कह रहे हो, और की सुनते नहीं हो,
एक तुम सच्चे बने हो, शेष सब झूठे बसे हैं।
रोक करके सास सौ आरोप इस पर रख दिए हैं।
कुछ पता है, सुन इसे कितना कि रोना पड रहा है ?

—"नीद इसको भी अकेले रात भर आती कहाँ है।
मिलन की इसम तुम्हारे हित रुदन मचती निरन्तर
यह ललकती है तुम्हारे दशनो की प्राथना म,
कल न पडती आग जलती, चैन सारा उठ गया है।
यह तुम्हारे से अधिक तुमको उठाना चाहती है,
आज की कल की समस्या से बचाना चाहती है।
शा त-सी दिख वेदना को बहुत गहरे पालती है
कह न पाती है दबोचे दुख, खुद को कोसती है।"

अब कहाँ सुधि प्राण की जो कंठ में ही अटकते हैं।
हा, यही भवितव्य जो हतभाग सा रोता रहेगा !
क्या कहे, मन की व्यथा, किस आग पर वह चल रहा है !
जो असह चिर कसक, जी पर तौल, जीना पड़ रहा है !

क्या असम्भव काम उसको सौंप कर वह चल दिया है !
मान कर सच, वह इसे निष्णात हो कर कर सकेगा ।
तुम न दीखो सामने तो वह किसे आवाज देगा ?
कौन उसके भाल को ही फोड़ देना चाहता है !

